प्रसार दूत

कृषि विज्ञान की अग्रणी पत्रिका

अक्टूबर – दिसम्बर, 2024

भाकृअनुप
ICAR

कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)

कृषि प्रौद्योगिकी आकलन एवं स्थानान्तरण केन्द्र
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
नई दिल्ली–110012

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
IARI 1905
जीव – जीवन कृषि

संपादकीय

भारत अपने 2.4 प्रतिशत क्षेत्र पर विश्व की 17.5 प्रतिशत आबादी के खाद्य प्रबंधन के लिए सतत प्रयासरत है। भारत में कृषि क्षेत्र में हरित क्रांति, श्वेत (दुग्ध) क्रांति, नीली (मत्स्य) क्रांति, पीली (तेल) क्रांति, स्वर्णिम (फल एवं शहद) क्रांति से भारत के विकास में अग्रणी भूमिका निभाई है, जिसने देश के खाद्यान्न उत्पादन को लगभग 5.6 गुना, बागवानी फसलों के उत्पादन को 10.5 गुना, मछली उत्पादन को 16.8 गुना बढ़ाने में सक्षम बनाया है। कृषि की इन उपलब्धियों को प्राप्त करने में भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान ने एक अहम भूमिका निभाई है और आज भी किसानों की समस्याओं का समाधान खोजने एवं उनके जीवन को बेहतर बनाने के लिए लगातार प्रयासरत है। भारतीय कृषि अब देश की अर्थव्यवस्था में कृषि की भूमिका को और बढ़ाने का समय आ गया है।

सतत विकास लक्ष्य पर्यावरण को नुकसान पहुंचाए बगैर, पृथ्वी पर संसाधनों को बनाए रखने के साथ–साथ कृषि उपज बढ़ाने का लक्ष्य रखते हैं। भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली ने ऐसी प्रौद्योगिकियां विकसित की हैं जिनमें सतत विकास लक्ष्यों की प्राप्ति में योगदान देने की क्षमता है। मूलभूत और महत्वपूर्ण अनुसंधान के संचालन में भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान का योगदान अतुलनीय रहा है। चाहे फसल सुधार की बात हो या फिर पर्यावरण के साथ सामंजस्य बनाकर निरंतर कृषि उत्पादकता बढ़ाने की बात हो, इस संस्थान ने हर क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह संस्थान नवीन प्रौद्योगिकियों और विस्तार मॉडल को विकसित करने में अग्रणी नेतृत्व की भूमिका निभा रहा है।

संस्थान ने जलवायु–प्रतिरोधी फसल किस्मों को विकसित करने में महत्वपूर्ण प्रगति की है, जिससे प्रतिकूल जलवायु परिस्थितियों में भी खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित होती है। चावल और मसूर जैसी महत्वपूर्ण फसलों में रोग प्रतिरोधक क्षमता और सूखा सहिष्णुता के लिए जेनेटिक मार्करों की पहचान संस्थान की वैज्ञानिक कुशलता का प्रमाण है। संस्थान द्वारा विशेष रूप से धान–गेहूं फसल चक्र में सतत कृषि प्रथाओं पर किया गया शोध एक समयोचित हस्तक्षेप है। इसके अतिरिक्त, संस्थान द्वारा उत्तर–पश्चिम भारत में गेहूं की पैदावार को सीमित करने वाले कारकों की पहचान करने और मणिपुर जैसे जलवायु–संवेदनशील क्षेत्रों के लिए वैकल्पिक फसलों की खोज करने के प्रयास कृषि चुनौतियों के लिए एक समग्र दृष्टिकोण का प्रदर्शन करते हैं।कृषि को आमतौर पर सीमित गतिशीलता वाला कम तकनीक वाला क्षेत्र माना जाता है, लेकिन आर्थिक उदारीकरण और तेजी से विकसित हो रहे अधिक दृढ़ समाज के परिणामस्वरूप पिछले दशकों में इसमें काफी बदलाव आया है, और आज समय इस बात का है कि किसान अपनी सामान्य खेती को कृषि उद्यम में परिवर्तित कर आत्मनिर्भर बनें।

भारत एक बहु–उत्पाद कृषि महाशक्ति है क्योकि भारत की तुलना में कोई भी अन्य देश इतनी अधिक खाद्य और गैर–खाद्य फसलें नहीं उगाता है। कृषि, देश के लगभग 58 प्रतिशत जनसंख्या को रोजगार मुहैया कराती है। वर्तमान में भारतीय कृषि अपनी क्रांतियों के लंबी श्रृंखला एवं इसके परिणामस्वरूप उल्लेखनीय उपलब्धियों के साथ बुलंदी पर

है। इसे वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धी, जलवायु बदलावों के प्रति तन्यक, खाद्य एवं पोषण सुरक्षा प्रदान करने वाली और संपोषणीय क्षमतायुक्त बनाने के लिए गंभीर प्रयास किए गए हैं। हमारा राष्ट्र अब अमृत काल के लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में अग्रसर हो रहा है। हाल के वर्षों में वैश्वीकरण और बाजार एकीकरण के कारण अब ग्रामीण अर्थव्यवस्था ऐसे किसान–उद्यमियों से अधिक प्रभावित हो रही है जो बाजार मांगों के प्रति अधिक संवेदनशील हैं। भारत आपूर्ति और मूल्य श्रृंखलाओं के क्षेत्रों में नवाचारों के माध्यम से कृषि जिंसों में अपनी वैश्विक उपस्थिति दर्ज कराने के लिए तैयार है। भोज्य पदार्थों की बर्बादी रोकने और मूल्यवर्धित उत्पादों व विपणन के माध्यम से उच्च आमदनी सुनिश्चित करने के लिए फसलोत्तर प्रबंधन पर जोर देना आवश्यक हो गया है। स्थानीय स्तर पर उद्यमियों के उद्भवन से कृषि आधारित उद्यमिता और स्टार्ट–अप के विकास को और बढ़ावा मिलेगा। यही बदलाव विकसित भारत की नीव बनेगी।

वैज्ञानिक सफलताओं के साथ, संस्थान किसानों को सशक्त बनाने के लिए प्रतिबद्ध है। क्षमता निर्माण कार्यक्रमों, कार्यशालाओं और विभिन फसलों पर किए गए कृषक वैज्ञानिक संवाद एवं प्रक्षेत्र दिवस ने किसानों को आधुनिक कृषि प्रथाओं को अपनाने के लिए आवश्यक ज्ञान और कौशल प्रदान किए हैं। संस्थान की आउटरीच पहल, जिसमें किसान गोष्ठियाँ और प्रदर्शनियाँ शामिल हैं, ने किसान–वैज्ञानिक संबंध को मजबूत किया है। इसके अलावा, सार्वजनिक और निजी भागीदारों के साथ संस्थान का सहयोग प्रौद्योगिकी हस्तांतरण और कृषि क्षेत्र में उद्यमिता को बढ़ावा दे रहा है। हरित क्रांति के जनक प्रो. एम.एस. स्वामीनाथन को भारत रत्न से सम्मानित किया जाना उनके अमूल्य योगदान के लिए एक उपयुक्त श्रद्धांजलि है। उनकी विरासत के वाहक के रूप में, संस्थान 'हरित से सदाबहार क्रांति' के उनके सपने को साकार करने के लिए प्रतिबद्ध है। अत्याधुनिक अनुसंधान को अपनाकर, स्थायी प्रथाओं को बढ़ावा देकर और किसानों को सशक्त बनाकर, संस्थान भारतीय कृषि के भविष्य को आकार दे रहा है।

प्रसार दूत के इस विशेष अंक में हमने रबी फसलों से जुड़ी कृषि के नवीनतम आयामों को उजागर करने का प्रयास किया है। इस अंक में हमने महत्वपूर्ण विषय जैसे वर्मीकम्पोस्ट उत्पादन,आलू की उन्नत खेती,संतुलित आहार का महत्व, ड्रोन का खेती में महत्व,गुलाब की नई क़िस्म, अंगूर की छटाई का महत्व, गेहू की फसल में कीट प्रबंधन,चने में रोग और कीटो की जानकारी, बागवानी फलो की अधिक पैदावार कैसे ली जाये तथा पशुओ और उनके नवजात बच्चो की देखभाल शामिल किए हैं। हमें उम्मीद है कि यह अंक आपके लिए उपयोगी सिद्ध होगा और आप कृषि के इस बदलते परिदृश्य के बारे में अधिक जान पाएंगे। आपकी प्रतिक्रिया हमारे लिए महत्वपूर्ण है, इसलिए कृपया हमें बताएं कि आपको यह अंक कैसा लगा।

संपादक

अक्टूबर – दिसंबर, 2024

प्रसार दूत

वर्ष 29 2024

संरक्षक
डॉ. सीएच. श्रीनिवास राव
निदेशक
डॉ. रविन्द्र पडारिया
संयुक्त निदेशक (प्रसार)
प्रधान सम्पादक
डॉ. ए.के. सिंह
सम्पादक
डॉ. एन.वी. कुंभारे
सम्पादक मंडल
डॉ. कन्हैया सिंह
डॉ. सचिन सुरोशे
डॉ. टीकम सिंह
डॉ. गिरजेश महरा
डॉ. प्रतिभा जोशी
डॉ. वाई पी सिंह
तकनीकी सहयोग
श्री विजय सिंह जाटव
श्री लक्खी राम मीणा
श्री राजेश सिंह

शुल्क और लेख भेजने एवं पत्रिका मंगाने का पता
कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)
भा.कृ.अ.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
नई दिल्ली–110012
फोनः 011–25841039
पूसा एग्रीकॉमः 1800118989 (टोल फ्री)
ई–मेंलः incharge_atic@iari.res.in
वेबसाइटः www.iari.res.in

विषय सूची पृष्ठ संख्या

सम्पादकीय

1. आधुनिक तकनीकों द्वारा आलू की उन्नत खेती 1
2. पोषण सुरक्षा के लिए संतुलित आहार का महत्त्व 5
3. चने की फसल में एकीकृत कीट एवं रोग प्रबंधन 10
4. बीजोपचारः कृषि में खुशहाली के लिए सफल कुंजी 14
5. गेहूं की फसल में समेकित कीट प्रबंधन 18
6. शलगम की उन्नत किस्मों की खेती और बीज उत्पादन के वैज्ञानिक दृष्टिकोण 22
7. भारत में स्मार्ट कृषि के लिए ड्रोन प्रौद्योगिकी का अनुप्रयोग 27
8. गुलाब की नई किस्म पूसा अल्पना से व्यावसायिक खेती 31
9. पॉलीहाउस के निर्माण से पहले सूत्रकृमि के लिए मिट्टी परीक्षण 36
10. अच्छे उत्पादन हेतु अंगूर में छँटाई 38
11. अधिक आय एवं पोषण हेतु अमरूद की रंगदार किस्मों की बागवानी 41
12. अधिक आय हेतु उत्तम कृषि क्रियाओं की प्रासंगिकता 44
13. पशुओं में नवजात बच्चों का मृत्यु दर रोकने के उपाय 49
14. वर्मीकम्पोस्ट उत्पादन– महिला किसान की सफलता की कहानी 51

वार्षिक शुल्क ₹ 150/– मनीआर्डर द्वारा

आधुनिक तकनीकों द्वारा आलू की उन्नत खेती

पंकज नौटियाल[1] योगेन्द्र प्रताप सिंह[2] एवं आर के सिंह[3]
[1]कृषि विज्ञान केन्द्र, हरदोई–II, उत्तर प्रदेश
[2]भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
[3]कृषि विज्ञान केन्द्र, लखीमपुर खीरी–II, उत्तर प्रदेश

भारत में आलू एक महत्वपूर्ण खाद्य फसल है। भारत में आलू का उत्पादन आठ प्रमुख क्षेत्रों में किया जाता है, जिनमें प्रमुखतः उत्तर–पश्चिमी पहाड़ियां, उत्तर–पश्चिमी मैदान, पूर्वी मध्य मैदान, और दक्षिण भारत के कुछ क्षेत्र शामिल हैं। इनमें उत्तर प्रदेश, बिहार और पश्चिम बंगाल का योगदान देश के कुल उत्पादन का लगभग 80% है। वर्तमान में, भारत में 2.34 मिलियन हेक्टेयर भूमि पर 59.74 मिलियन टन आलू का उत्पादन किया जा रहा है, जिसकी औसत उत्पादकता 255.2 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। बीते तीन दशकों में भारत ने आलू उत्पादन में उल्लेखनीय प्रगति की है। भारत ने भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा विकसित विभिन्न तकनीकों और उन्नत किस्मों को अपनाकर उत्पादकता में वृद्धि की है।

आलू की प्रमुख किस्में

केंद्रीय आलू अनुसंधान संस्थान, शिमला द्वारा विकसित कुछ प्रमुख किस्में निम्नलिखित हैं:

कुफ़री चंद्रमुखी, कुफ़री बहार, कुफ़री पुखराज, कुफ़री अशोक, कुफ़री बादशाह, कुफ़री लालिमा, कुफ़री सिंदूरी, कुफ़री सतलज, कुफ़री आनंद, कुफरी सूर्या, कुफरी लालिमा, कुफरी संगम, कुफरी सफेद कुफरी सिंधुरी, कुफरी मेघा, कुफरी शैलजा।

कुफ़री चिप्सोना: यह किस्म चिप्स बनाने के लिए मशहूर है।

कुफ़री अलंकार: यह किस्म उत्तर भारत के मैदानी इलाकों में अच्छी पैदावार देती है।

कुफ़री नीलकंठ: यह किस्म ज्यादा ठंड के मौसम को भी सहन कर सकती है।

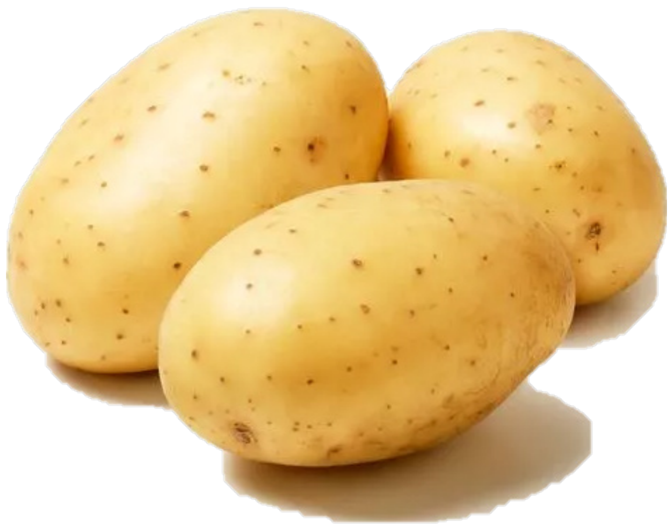

कुफ़री सिंदूरी: यह किस्म पाले को भी सहन कर सकती है।

कुफ़री थार: यह किस्म भारत के उत्तर प्रदेश, हरियाणा एवं छत्तीसगढ़ प्रदेशों में लगाई जाती है।

कुफ़री भास्कर: यह किस्म गर्मी सहन करने में सक्षम है।

कुफ़री देवा: यह किस्म भारत के मैदानी और पहाड़ी दोनों इलाकों के लिए बढ़िया है।

इसके अतिरिक्त केंद्रीय आलू अनुसंधान केंद्र, शिमला द्वारा **जैविक संवर्धित आलू** की किस्में विकसित कि गयी है जिनमे कुफरी नीलकंठ व कुफरी जामुनिया यह किस्म पोषक तत्वों के अलावा एंटी ऑक्सीडेंट गुणों से भरपूर है और इसमें कैंसर से लड़ने वाला कैरोटिन एंथोसाइनिन तत्व भी मौजूद है। कुफरी नीलकंठ की जहां बाहरी त्वचा बैंगनी थी वहीं कुफरी जामुनिया का गूदा भी बैंगनी है। इन किस्मों को पोषण सुधार और स्वास्थ्य सुरक्षा के उद्देश्य से विकसित किया गया है।

अगेती प्रजातियों का विवरणः

क्रम संख्या	किस्म	परिपक्वता अवधि (दिन)	उपज (क्विंटल/हेक्टेयर)	रोग प्रतिरोधक क्षमता
1	कुफरी अशोक	70–80	300–350	झुलसा रोग प्रतिरोधी
2	कुफरी चंद्रमुखी	80–90	250–300	झुलसा रोग प्रतिरोधी
3	कुफरी पुखराज	70–90	400–500	झुलसा रोग प्रतिरोधी
4	कुफरी थार 1, 2, 3	80–90	350–400	सूखा प्रतिरोधी

बुवाई का समय

आलू की बुवाई का उपयुक्त समय नवम्बर के प्रथम सप्ताह से लेकर नवम्बर के अंत तक है। हस्त नक्षत्र के बाद एवं दीपावली के समय आलू रोपण का सबसे उपयुक्त समय माना जाता है। बेहतर उपज के लिए बुवाई 5 नवम्बर से 20 नवम्बर तक पूरी कर लेनी चाहिए।

बीज की मात्रा और बुवाई की विधि

आलू की बुवाई के लिए आमतौर पर 30–35 क्विंटल प्रति हेक्टेयर बीज की आवश्यकता होती है। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 60 सेमी और कंद से कंद की दूरी 15 सेमी होनी चाहिए। बुवाई के बाद मिट्टी की नमी बनाए रखने के लिए हल्की सिंचाई करें।

खाद एवं सिंचाई प्रबंधन

मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने के लिए 25–30 टन/ हेक्टेयर गोबर की खाद, 75 किलोग्राम नाइट्रोजन, 60 किलोग्राम फॉस्फोरस और 100 किलोग्राम पोटाश का प्रयोग करें। नाइट्रोजन का आधा भाग बुवाई के समय और शेष 25–30 दिन बाद दें। सिंचाई के लिए बुवाई के तुरंत बाद पहली सिंचाई 8–10 दिन के अंतराल पर अन्य सिंचाइयाँ करें।

बीज और कंद प्रबंधन

बीज की मात्राः खेत को अच्छे से तैयार कर 30–35 क्विंटल/हेक्टेयर आलू के कंद का प्रयोग करें। बीज कंदों के साथ 75 किग्रा नाइट्रोजन, 60 किग्रा फॉस्फोरस, और 100 किग्रा पोटाश प्रति हेक्टेयर मिलाएं।

नाइट्रोजन का प्रबंधनः पहली खुराक में 75% नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, और पोटाश को खेत में मिलाएं। शेष 25% नाइट्रोजन को बुवाई के 25–30 दिनों बाद यूरिया के रूप में डालें।

अतिरिक्त पोषक तत्वः फसल के बेहतर विकास के लिए 25 किग्रा/हेक्टेयर जिंक सल्फेट का प्रयोग करें।

सिंचाई प्रबंधन

सिंचाई का समय और मात्राः बुवाई से पहले एक बार खेत में सिंचाई करें। इसके बाद नियमित अंतराल पर सिंचाई आवश्यक है। ड्रिप और स्प्रिंकलर सिंचाई पद्धति अपनाने से 30–50% पानी की बचत होती है। इन विधियों से मिट्टी में नमी बनी रहती है, जिससे तापमान में 2–3^{0}C तक कमी और खरपतवार नियंत्रण में सहायता मिलती है।

खरपतवार नियंत्रण

आलू फसल में खरपतवार नियंत्रण एक महत्वपूर्ण कार्य है, क्योंकि खरपतवार न केवल पौधों से पोषक तत्व, जल और सूर्य का प्रकाश छीनते हैं, बल्कि फसल की वृद्धि पर भी नकारात्मक प्रभाव डालते हैं। खरपतवारों की अधिकता से आलू की उपज में 60% तक की कमी हो सकती है। आलू में मुख्य रूप से घास जाति के खरपतवार जैसे टेंडी घास, गूलर और दूब, चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार जैसे बथुआ, कनकुआ, गाजर घास, और सेज खरपतवार जैसे मोथा पाये जाते हैं। इन खरपतवारों के नियंत्रण के लिए विभिन्न उन्नत विधियाँ अपनाई जाती हैं, जिनमें यांत्रिक विधियाँ, रासायनिक विधियाँ और संयुक्त विधियाँ शामिल हैं। यांत्रिक विधियों में बुवाई के 20–25 दिन बाद हाथ से निराई करना, और खुरपी या हेरो का उपयोग करके खरपतवारों को हटाना शामिल है। रासायनिक विधियों में पेंडीमेथलीन और मेट्रीब्यूजिन जैसे शाकनाशियों का

छिड़काव किया जाता है। पेंडीमेथलीन का छिड़काव बुवाई के तुरंत बाद किया जाता है, जबकि मेट्रीब्यूजिन का प्रयोग तब किया जाता है जब फसल 10–15 सेमी की हो। संयुक्त विधियों में रासायनिक शाकनाशियों का प्रारंभिक अवस्था में छिड़काव और बाद में हाथ से निराई की जाती है। इन उपायों से फसल की वृद्धि में सुधार होता है, उत्पादन लागत में कमी आती है, और उपज में वृद्धि होती है, जिससे आलू की खेती अधिक लाभप्रद और उत्पादक बनती है।

आलू फसल में लगने वाले प्रमुख रोग और उनका प्रबंधन

आलू फसल में झुलसा रोग (Blight Disease) प्रमुख रूप से ठंडे और नम मौसम में फैलता है, जो फसल की गुणवत्ता और उत्पादन को गंभीर रूप से प्रभावित करता है। यह रोग मुख्य रूप से दो प्रकार के होते हैं – अगेती झुलसा (Early Blight) और पछेती झुलसा (Late Blight)। झुलसा रोग के प्राथमिक लक्षणों में पत्तियों पर गहरे भूरे या काले धब्बे दिखाई देना और धब्बों के चारों ओर पीले रंग की परत विकसित होना शामिल है। गंभीर स्थिति में पूरा पौधा सूखने लगता है। इस रोग से बचाव के लिए रोग प्रतिरोधी किस्मों का चयन, खेत की स्वच्छता, और फसल चक्र का पालन किया जाता है।

झुलसा रोग की रोकथाम के लिए रासायनिक नियंत्रण एक प्रभावी तरीका है। इसके लिए विभिन्न फफूंदनाशकों का प्रयोग किया जाता है, जैसे इंडोफिल एम–45, ब्लाइटॉक्स, और रीडोमिल, जो समय–समय पर छिड़काव के रूप में उपयोग किए जाते हैं। इन दवाओं का छिड़काव 10–15 दिन के अंतराल पर करना चाहिए, और छिड़काव का समय सुबह या शाम का चुनना चाहिए। इसके अतिरिक्त, संतुलित उर्वरकों का प्रयोग, फसल की नियमित निगरानी, और उचित सिंचाई प्रबंधन जैसे उपाय भी झुलसा रोग के नियंत्रण में सहायक होते हैं। इन उपायों को अपनाकर आलू की फसल को झुलसा रोग से बचाया जा सकता है और उत्पादन में वृद्धि सुनिश्चित की जा सकती है।

आलू फसल में प्रमुख कीट और उनका प्रबंधन

आलू की फसल में विभिन्न प्रकार के कीट फसल को नुकसान पहुंचाते हैं, जिससे उत्पादन में कमी और फसल की गुणवत्ता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। प्रमुख कीटों में तना छेदक, सफेद मक्खी, मेढ़क कीट, फली छेदक और आलू की पत्तियों का झुलसना शामिल हैं। तना छेदक पौधों के तने को खाकर कमजोर करता है, जबकि सफेद मक्खी पत्तियों का रस चूसकर पौधे को कमजोर कर देती है और विषाणुजनित रोग फैलाती है। मेढ़क कीट तनों को काटता है, फली छेदक कंदों और फलियों को नुकसान पहुंचाता है, और पत्तियों का झुलसना कीट पत्तियों को मोड़कर रस चूसता है। इन कीटों से बचाव के लिए उचित रासायनिक उपचार जैसे डाइक्लोरवॉस, क्लोरपायरीफॉस, इमिडाक्लोप्रिड, क्लोरएन्ट्रानिलिप्रोल, स्पिनोसेड और फेनवेलरेट का छिड़काव किया जाता है।

इसके अलावा, जैविक नियंत्रण उपायों का भी पालन किया जा सकता है, जैसे ट्राइकोग्रामा जैविक एजेंट का उपयोग। खेती प्रबंधन द्वारा खेत की सफाई और फसल चक्र अपनाकर कीटों के प्रसार को नियंत्रित किया जा सकता है। पौधों की नियमित निगरानी और प्रारंभिक लक्षणों को पहचानकर समय पर उपाय करने से भी कीटों का प्रभाव कम किया जा सकता है। इन उपायों को अपनाकर आलू की फसल को कीटों के नुकसान से बचाया जा सकता है, जिससे फसल की गुणवत्ता में सुधार और बेहतर उत्पादन सुनिश्चित किया जा सकता है।

आलू की फसल की देखभाल के लिए सुझाव

आलू की फसल में नियमित देखभाल से न केवल

उपज बढ़ती है, बल्कि उसकी गुणवत्ता भी बनी रहती है। सबसे पहले, फसल की नियमित निगरानी जरूरी है। आलू बुवाई के 60 दिन बाद, खेत में घूमकर प्रत्येक पंक्ति की स्थिति की जांच करें। कंद अगर मिट्टी से बाहर दिखे तो उन्हें तुरंत मिट्टी से ढक दें क्योंकि खुले कंदों का हरा होना उनकी गुणवत्ता को प्रभावित कर सकता है। इसके अलावा, खुले कंदों का प्रभाव उनके विकास पर भी पड़ता है, जिससे फसल की गुणवत्ता कम हो सकती है।

चूहों से बचाव भी आलू की फसल की देखभाल में महत्वपूर्ण है। चूहों के हमले का पता लगाने के लिए खेत में उनके बिलों का निरीक्षण करें। अगर बिल पाए जाएं, तो प्रत्येक बिल में 10 ग्राम थीमेट (कीटनाशी) डालें और तुरंत छेद को मिट्टी से बंद कर दें। इससे चूहे या तो मर जाएंगे या खेत छोड़कर चले जाएंगे। इसके अतिरिक्त, आलू की भंडारण क्षमता बढ़ाने के लिए परिपक्वता अवधि पूरी होने पर लत्तर काटने का महत्व है। लत्तर काटने के बाद 10 दिन बाद खुदाई करने से कंद का छिलका मजबूत हो जाता है, जो भंडारण में मदद करता है और सड़न की समस्या को कम करता है। इन उपायों से आलू की गुणवत्ता में सुधार होता है और फसल का उत्पादन बढ़ता है।

आलू की खुदाई, उपज और देखभाल

आलू की खुदाई सही समय पर करना अत्यंत महत्वपूर्ण है, ताकि कंद की गुणवत्ता बनी रहे। आलू की खुदाई आमतौर पर बुवाई के 60 दिन बाद की जाती है, जो बाजार भाव और आवश्यकता के आधार पर निर्भर करता है। अगर आलू को भंडारण के लिए रखना है, तो कंद की परिपक्वता की जाँच करनी चाहिए। परिपक्वता की जाँच के लिए कंद को हाथ में लेकर अंगूठे से दबाकर देखा जाता है; यदि छिलका अलग नहीं होता है तो कंद परिपक्व समझा जाता है। परिपक्व कंद को सही समय पर खुदाई करने से भंडारण के दौरान सड़न की समस्या नहीं होती है। खुदाई का कार्य दिन के 12 बजे तक पूरा कर लेना चाहिए और खुदे कंद को सीधे धूप में न रखें, क्योंकि धूप में रखने से उनकी भंडारण क्षमता कम हो जाती है। इन्हें छायादार स्थान पर रखना चाहिए। खुदाई के लिए खुरपी या पोटैटो डीगर का उपयोग किया जाता है, और इस दौरान ध्यान रखें कि आलू कटे नहीं।

आलू की उपज विभिन्न समयावधियों के आधार पर भिन्न हो सकती है। बुवाई के 60 दिन बाद औसतन 100 क्विंटल प्रति हेक्टेयर, 75 दिन बाद 200 क्विंटल प्रति हेक्टेयर, 90 दिन बाद 300 क्विंटल प्रति हेक्टेयर और 105 दिन बाद, प्रभेद के अनुसार, 400 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक उपज प्राप्त की जा सकती है। सही सिंचाई का महत्व भी उपज पर बहुत प्रभाव डालता है। यदि प्रथम सिंचाई रोपनी के 10 दिन बाद और 20 दिन के भीतर नहीं की जाती है, तो उपज आधी हो सकती है। इन देखभाल उपायों को ध्यान में रखते हुए, आलू की फसल को अच्छे तरीके से उगाया जा सकता है और अधिकतम उपज प्राप्त की जा सकती है। इस प्रकार, आलू की खेती में उचित देखभाल और सही तकनीकों का पालन करने से बेहतर परिणाम मिल सकते हैं। इस प्रकार वैज्ञानिक तरीके से आलू की खेती करके अधिक लाभ अर्जित किया जा सकता है।

पोषण सुरक्षा के लिए संतुलित आहार का महत्त्व

सुकन्या बरूआ[1], सत्यप्रिय[1], सुपर्णा घोश–जेरथ[2], कुलदीप कुमार[1], अश्विनी अनिल[1] एवं राजीव कुमार[1]
[1]भ.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110 012
[2]जॉर्ज वैश्विक स्वास्थ्य संस्थान भारत, नई दिल्ली–110 025

भारत खाद्यान्न उत्पादन में अग्रणी हैं, वही पोषण सुरक्षा के मुद्दे पर चुनौती का सामना कर रहा हैं। पोषण सुरक्षा का अर्थ है एक ऐसा वातावरण या स्थिति जहां हर व्यक्ति को उसकी शारीरिक और मानसिक आवश्यकताओं के अनुसार पर्याप्त और संतुलित आहार प्राप्त हो सके। ताकि वे इष्टतम स्वास्थ्य बनाए रख सकें। हालांकि, यह सुनिश्चित करना केवल खाद्य उत्पादन तक सीमित नहीं है, बल्कि यह संतुलित आहार की उपलब्धता, विविधता, पहुंच और उसे किफायती बनाने पर भी निर्भर करता है।

भारत में कुपोषण की स्थिति

वर्तमान समय में भारत कुपोषण के दोहरे बोझ का सामना कर रहा है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार कुपोषण, शरीर में ऊर्जा एवं पोषक तत्वों की कमी, बढ़ोत्तरी, या असंतुलन को दर्शाता है। कुपोषण उस स्थिति का नाम है जिसमें पोषक तत्व शरीर में सही अनुपात में विद्यमान नहीं होते हैं अथवा उनके बीच में असंतुलन होता है। अतः हम कह सकते हैं कि कुपोषण, अधिक पोषण व कम पोषण दोनों को कहते हैं। कम पोषण का मतलब है कि किसी एक या एक से अधिक पोषक तत्वों का आहार में कमी होना। उदाहरणतः – विटामिन ए, प्रोटीन, या ऊर्जा की कमी होना कुपोषण हैं। अधिक पोषण से अर्थ है कि एक या अधिक पोषक तत्वों की भोजन में अधिकता होना। उदाहरणतः, जब व्यक्ति एक दिन में ऊर्जा खपत से अधिक ऊर्जा ग्रहण करता है, तो वह वसा के रूप में शरीर में एकत्र होती रहती है और उससे व्यक्ति मोटापे का शिकार हो जाता है। एक ओर, असंतुलित आहार और गतिहीन जीवनशैली के कारण मोटापा और इससे जुड़ी बीमारियों में वृद्धि हो रही है। दूसरी ओर, बढ़ी आबादी में पोषक तत्वों की कमी विशेषकर विटामिन और खनिजों की कमी से जूझ रही है। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण 2019–21 के अनुसार असंतुलित आहार और गतिहीन जीवन शैली के कारण 24 प्रतिशत वयस्क महिलाएँ और 23 प्रतिशत वयस्क पुरुष मोटापे से ग्रस्त हैं तथा 57 प्रतिशत महिलाएं और 25 प्रतिशत पुरुष एनीमिया से पीडित हैं। ग्लोबल हंगर इंडेक्स 2024 के अनुसार भारत 127 देशों की सूची में 105वें स्थान पर है। भारत में चाइल्ड वेस्टिंग 18.7 प्रतिशत है जो कि अन्य देशों की तुलना में सबसे अधिक है वहीं चाइल्ड स्टंटिग 35.5 प्रतिशत है। हाल ही में प्रकाशित यूनिसेफ की रिपोर्ट के अनुसार भारत के 50 प्रतिशत बच्चे कुपोषित हैं। वयस्कों की पोषण स्थिति में 18.7 प्रतिशत महिलाएँ और 11.5 प्रतिशत पुरुष (आयु 15–49) दुबले हैं। यह आँकड़े दिखाते हैं कि पोषण सुरक्षा की दिशा में अभी बहुत काम किया जाना बाकी है।

पोषक तत्वों के कार्य

कार्बोहाइड्रेटः यह ऊर्जा का मुख्य स्रोत होते हैं और इन्हें चावल, गेहूं, और आलू जैसे खाद्य पदार्थों से प्राप्त किया जा सकता है।

प्रोटीनः यह शरीर के ऊतकों की मरम्मत और निर्माण में मदद करते हैं, प्रोटीन शरीर की कोशिकाओं को मजबूत करने और प्रतिरक्षा प्रणाली को स्वस्थ रखने में मदद करता है, जिससे शरीर बैक्टीरिया और वायरस से लड़ने में सक्षम हो पाता है। जो दाल, मांस, मछली, अंडे और दही जैसे खाद्य पदार्थों से मिलते हैं। दालें और फलियाँ प्रोटीन, आयरन, और फाइबर का अच्छा स्रोत, जो रक्त निर्माण और प्रतिरक्षा क्षमता को बढाते हैं। डेयरी उत्पाद कैल्शियम और प्रोटीन का स्रोत।

वसाः यह शरीर को ऊर्जा के अलावा विटामिनों को अवशोषित करने में मदद करती है, और यह घी, मक्खन, तेल, और नट्स से प्राप्त होती है। सूखे मेवे स्वस्थ वसा के साथ प्रोटीन और विटामिन के भी अच्छे स्रोत हैं।

विटामिन और खनिजः ये दोनों शरीर के विभिन्न कार्यों को सुचारू रूप से चलाने के लिए आवश्यक होते हैं, जैसे रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाना और हड्डियों को मजबूत करना और शरीर में पानी और इलेक्ट्रोलाइट संतुलन को बनाए रखते हैं। खनिज जैसे कैल्शियम, आयरन, पोटेशियम, जिंक आदि तत्व, जो हरी सब्जियों, फल, और सूखे मेवों में पाए जाते हैं। फल विटामिन, खनिज, और एंटीऑक्सिडेंट से भरपूर एवं प्राकृतिक मिठास के साथ होते है वहीं सब्जियाँ विटामिन, खनिज, और फाइबर का प्रमुख स्रोत होते हैं।

फाइबरः यह पाचन तंत्र को स्वस्थ रखने में मदद करता है और शरीर से विशाक्त पदार्थों को बाहर निकालता है। इसे साबुत अनाज, फल, और सब्जियों से प्राप्त किया जा सकता है।

पानीः पौष्टिक व संतुलित आहार के साथ–साथ हमें पानी पीने की तरफ भी ध्यान देने की जरूरत है क्योंकि हमारे शरीर में लगभग 70 प्रतिशत हिस्सा पानी है पानी का असंतुलन हमें बीमार कर सकता है इसलिए पानी भी हमारे शरीर का महत्वपूर्ण पोषक तत्व है। पानी हमारे शरीर के पोषक तत्वों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने में सहायता करता है, पानी शरीर का तापमान ठीक रखता है, वसा को पचाता है, उर्जा देता है, पाचन क्रिया में सहायता करता है तथा शरीर से विशाक्त पदार्थों को बाहर निकालता है इसलिए हमें प्रतिदिन कम से कम 8–10 गिलास (2–3 लीटर) पानी अवश्य पीना चाहिए।

संतुलित आहार की परिभाषा

वह भोजन, जिसमें शरीर के अनुकूल पौषक तत्व जैसे कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, विटामिन और खनिज सही व उचित मात्रा में हों, वह हल्का, सुपाच्य हो, संतुलित आहार कहलाता है। यह आहार शरीर को ऊर्जा प्रदान करता है, ऊतकों का निर्माण करता है, और प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत करता है। एक संतुलित आहार में फल, सब्जियां, साबुत अनाज, लीन प्रोटीन, और स्वस्थ वसा शामिल होते हैं। राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा के दिशा–निर्देशों के अनुसार, प्रतिदिन पाँच बार खाने का मतलब है कि आपको कम से कम पाँच बार 80 ग्राम फल और सब्जियाँ खानी चाहिए जो कहना जितना आसान है, करना उतना ही मुश्किल है। इसके साथ ही पर्याप्त मात्रा में पानी पीना भी जरूरी है, क्योंकि यह शरीर की सभी क्रियाओं के सुचारू रूप से चलने के लिए महत्वपूर्ण है। आमतौर पर किसी भोजन को संतुलित तभी माना जाता है जब उससे प्रतिदिन शरीर को प्राप्त होने वाली कुल ऊर्जा का 50 से 60 प्रतिशत भाग कार्बोहाइड्रेट के जरिए, 10 से 15 प्रतिशत भाग प्रोटीन के जरिए और 20 से 30 प्रतिशत भाग वसा के जरिए प्राप्त हो। लेकिन हम 70 प्रतिशत से 80 प्रतिशत ऊर्जा कार्बोहाइड्रेट से लेते हैं जो खराब ग्लाइसेमिक नियंत्रण के लिए एक महत्वपूर्ण योगदान कारक भी है विशेषकर जब शारीरिक गतिविधि कम हों।

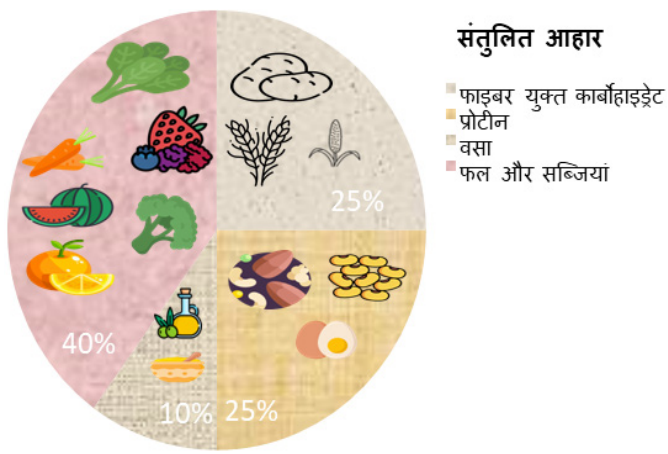

संतुलित आहार का महत्त्व

आज की तेज–तर्रार जीवनशैली के चलते पोषण जागरूकता की आवश्यकता पहले से कहीं अधिक हो गई है। जहाँ एक ओर हमारे पास खाद्यान्न की भरपूर मात्रा है, वहीं दूसरी ओर असंतुलित आहार और प्रसंस्कृत भोजन की आदतों के कारण लोगों में मोटापा, हृदय रोग और मधुमेह जैसी बीमारियों का प्रकोप बढ़ता जा रहा है। इन खाद्य पदार्थों में कैलोरी की मात्रा अधिक होती है, लेकिन पोषण कम होता है। इससे न केवल मोटापा और हृदय रोग जैसी बीमारियाँ बढ़ रही हैं, बल्कि विटामिन, खनिज, और प्रोटीन की कमी के कारण कुपोषण भी फैल रहा है। इसके अलावा, प्रसंस्कृत भोजन और प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों के बढते उपयोग से पर्यावरण पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ता है, जिससे प्रदूषण और संसाधनों की बर्बादी बढ़ती है।

पोषण सुरक्षा प्राप्त करने में संतुलित आहार का अत्यधिक महत्त्व है। अतः यह आवश्यक है कि हम अपने भोजन में विविधता लाएँ, संतुलन बनाए रखें, और पोषण जागरूकता को बढावा दें, ताकि हम एक स्वस्थ और समृद्ध समाज का निर्माण कर सकें।

संतुलित आहार का चुनाव

- विविधता का ध्यान रखें अपने आहार में विभिन्न खाद्य समूहों को शामिल करें, जैसे फल, सब्जियाँ, अनाज, प्रोटीन स्रोत, और डेयरी उत्पाद।
- स्थानीय और मौसमी खाद्य पदार्थ चुनें यह न केवल सस्ते होते हैं, बल्कि अधिक पोषक तत्वों से भरपूर होते हैं।
- खाने की चुनाव आदतों पर ध्यान दें नियमित समय पर खाना खाएं और स्वस्थ स्नैक्स का सेवन करें।
- पोषण के प्रति जागरूक रहें खाद्य लेबल पढ़ें और समझें कि आप क्या खा रहे हैं। यह सुनिश्चित करें कि आप संतुलित मात्रा में पोषक तत्व प्राप्त कर रहे हैं।

संतुलित आहार बनाए रखने के आयाम

1. पारंपरिक आहार और आधुनिक पोषण जागरूकता के बीच संतुलन की आवश्यकता

पारंपरिक आहार में पोषक तत्वों की भरपूर मात्रा होती है, लेकिन कभी–कभी उनमें आधुनिक वैज्ञानिक जानकारी की कमी होती है, इसीलिए पारंपरिक आहार को आधुनिक पोषण जागरूकता के साथ संतुलित करना जरूरी है। पोषण वैज्ञानिक यह साबित कर चुके हैं कि संतुलित आहार में कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, विटामिन, और खनिजों का सही अनुपात होना चाहिए। पारंपरिक आहार में यह संतुलन कुछ हद तक मौजूद होता है, लेकिन लोगों को जानकारी होनी चाहिए कि वे किस प्रकार इन आहारों को और बेहतर बना सकते हैं। आधुनिक पोषण विज्ञान से प्राप्त जानकारी को पारंपरिक आहार में समाहित करके बेहतर पोषण सुरक्षा सुनिष्चित की जा सकती है जिससे वैष्विक पोषण के सिद्धांतों का अनुपालन हो सकें। उदाहरण के लिए, पारंपरिक दाल–चावल में यदि हरी पत्तेदार सब्जियाँ और फाइबर युक्त खाद्य पदार्थ जोड़े जाएँ, तो यह और भी अधिक संतुलित हो जाएगा। स्थानीय स्तर पर उपलब्ध फल–सब्जियों का खाद्य पदार्थों के साथ सही संयोजन कर स्वास्थ्यवर्धक लाभों को बढ़ाया जा सकता है। पारंपरिक आहार की विविधता के साथ–साथ खाद्य पदार्थों को संतुलित रूप से अपनाना चाहिए। जैसे कि जहां अनाज से बने खाद्य पदार्थों का सेवन अधिक होता है, वहाँ प्रोटीन, विटामिन और खनिज युक्त खाद्य पदार्थों को भी शामिल करना चाहिए। स्थानीय स्तर पर उपलब्ध अनाज (ज्वार, बाजरा, गेहूं, चावल), दालें, फल–सब्जियाँ, और प्रोटीन स्रोत जैसे अंडे, दही, और सोया उत्पाद, जो आसानी से उपलब्ध हैं, इनका सेवन करने से शरीर को आवश्यक पोषण मिलता है। पारंपरिक और आधुनिक विज्ञान का संगम आवश्यक है ताकि लोग स्वस्थ और पौष्टिक भोजन का सेवन कर सकें। माता–पिता और शिक्षकों को यह सुनिष्चित करना चाहिए कि बच्चे संतुलित आहार का सेवन करें, ताकि वे एक स्वस्थ और खुशहाल जीवन का अनुभव कर सकें। संतुलित आहार की जानकारी और आदतें विकसित करने से बच्चों का भविष्य उज्ज्वल हो सकता है।

2. खाना पकाने की विधियाँ

भाप में खाना पकाने, उबालने और स्टर–फ्राई जैसी विधियाँ न केवल भोजन को स्वादिष्ट बनाती हैं, बल्कि उनके पोषक तत्वों को भी बनाए रखती हैं। इसके साथ ही कम तेल का उपयोग और खाद्य पदार्थों की विविधता को ध्यान में रखते हुए आहार को अधिक स्वस्थ और पौष्टिक बनाया जा सकता है।

संतुलित आहार के लाभ

संतुलित आहार शरीर को आवश्यक पोषण प्रदान कर शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को बनाए रखने में मदद करता है। यह विभिन्न बीमारियों से बचाव कर व्यक्ति को दीर्घकालिक स्वास्थ्य और खुशहाल जीवन जीने में सक्षम बनाता है। सभी को अपने आहार में विविधता और संतुलन बनाए रखने पर ध्यान देना चाहिए, आहार वह है जो आप खाते हैं जबकि पोषण का तात्पर्य उस ईंधन से है जिसकी आपको कार्य करने के लिए आवश्यकता होती है पोषण उस ईंधन को संदर्भित करता है जिसकी आपके शरीर को बेहतर ढंग से कार्य करने और अच्छे स्वास्थ्य को बनाए

रखने के लिए आवश्यकता होती है। यह पोषक तत्वों के सही मिश्रण को संदर्भित करता है।

आधुनिक समय में, संतुलित आहार की अनदेखी स्वास्थ्य समस्याओं को जन्म दे सकती है। इसलिए, पौष्टिक और संतुलित आहार के साथ पानी का सेवन भी आवश्यक है। संतुलित आहार हमारे शरीर को सभी आवश्यक पोषक तत्व प्रदान कर उसे स्वस्थ और सक्रिय बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह न केवल ऊर्जा और पोषण देता है, बल्कि बीमारियों से लडने और शारीरिक एवं मानसिक विकास में भी मदद करता है। संतुलित आहार में विभिन्न खाद्य समूहों से पोषक तत्वों का उचित संतुलन आवश्यक है।

पोषण सुरक्षा की परिभाषा

पोषण सुरक्षा का उद्देश्य यह है कि सभी लोगों के पास स्वस्थ, सुरक्षित और पौष्टिक भोजन तक निरंतर पहुंच हो, यह सुनिश्चित करता है कि हर उम्र, लिंग, और भौगोलिक क्षेत्र के व्यक्ति को आवश्यक पोषक तत्व मिलें ताकि वे स्वस्थ और सक्रिय जीवन जी सकें। अगर पोषण सुरक्षा सुनिश्चित नहीं होती, तो कुपोषण, कमजोरी, और अन्य स्वास्थ्य समस्याएं पैदा हो सकती हैं, जो व्यक्ति के विकास और समाज के समग्र विकास में बाधा उत्पन्न करती हैं।

आवश्यक पोषक तत्व जब सही अनुपात में हमारे शरीर की आवश्यकता अनुसार उपस्थित होते हैं, तब उस अवस्था को सर्वोत्तम पोषण या समुचित पोषण की संज्ञा दी जाती है। यह सर्वोत्तम पोषण स्वस्थ शरीर के लिए नितान्त आवश्यक है। केवल एक ही प्रकार के खाद्य पदार्थ में सभी पोषक तत्व पर्याप्त मात्रा में विद्यमान नहीं होते इसलिए भिन्न–भिन्न खाद्य पदार्थों को मिला कर आहार बनाना चाहिए ताकि हमें सभी पोषक तत्व मिल सकें। पोषण सुरक्षा केवल भोजन की उपलब्धता तक सीमित नहीं है, बल्कि उसमें विविधता, गुणवत्ता और सुरक्षित भोजन का भी ध्यान रखना जरूरी है। एक देश या समाज का समृद्धि और विकास भी तभी संभव है जब उसके नागरिक स्वस्थ और पोषित हों।

पोषण सुरक्षा का महत्व

1. पोषण सुरक्षा, मधुमेह और हृदय रोग जैसी आहार–संबंधी बीमारियों को रोककर स्वास्थ्य देखभाल लागत को कम कर सकती है। यह कुपोषण और इससे जुड़ी स्वास्थ्य समस्याओं जैसे स्टंटिंग, संज्ञानात्मक अपंगता एवं रोग संवेदनशीलता को रोककर व्यक्तियों के स्वास्थ्य एवं सेहत में सुधार करती है। इससे स्वास्थ्य देखभाल प्रणालियों पर बोझ कम होता है। 5 वर्ष से कम आयु के बच्चों में लगभग 45 प्रतिशत मौतें कुपोषण से संबद्ध होती हैं। क्वाशिओरकोर, प्रोटीन की कमी से होने वाली बीमारी है, जिससे शरीर में सूजन, त्वचा की समस्याएँ और कमजोरी होती है। मरास्मस, यह गंभीर ऊर्जा की कमी के कारण होता है, जिससे बच्चों का वजन बहुत कम हो जाता है, और वे कमजोर हो जाते हैं। यह आमतौर पर ऊर्जा और प्रोटीन की गंभीर कमी से होता है।
2. यह निर्धनता उन्मूलन सुनिश्चित करता है ताकि लोगों को पौष्टिक भोजन मिले, पोषण सुरक्षा का अभाव निर्धनता चक्र को बनाये रख सकता है, क्योंकि कुपोषण शैक्षिणक प्राप्ति में बाधा उत्पन्न कर सकता है और आय–अर्जन क्षमता को कम कर सकता है।
3. पोषण सुरक्षा को बढ़ावा देने में प्रायः सतत् कृषि अभ्यास भी शामिल होते हैं, जो पर्यावरण को संरक्षित करने और यह सुनिश्चित करने के लिये आवश्यक हैं कि आने वाली पीढ़ियाँ भी अपनी पोषण संबंधी आवश्यकताओं को पूरा कर सकें।
4. पोषण सुरक्षा खाद्य को एक बुनियादी मानव अधिकार के रूप में चिह्नित कर मानवीय गरिमा और समता का सम्मान करती है जो सभी लोगों के लिये उनकी सामाजिक–आर्थिक स्थिति या भौगोलिक स्थिति पर विचार किये बिना सुलभ होना चाहिये।
5. जब लोगों को पोषक आहार उपलब्ध होता है, तो उनका स्वास्थ्य सुधरता है, उनकी कार्यक्षमता बढती है और वे समाज और देष की समृद्धि में योगदान दे सकते हैं। पोषण सुरक्षा को सुनिष्चित करना इसलिए महत्वपूर्ण है, ताकि समाज के हर व्यक्ति को संतुलित आहार प्राप्त हो सके और वह स्वस्थ, सक्रिय और पूर्ण जीवन जी सकें।

पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करने के उपाय

1. आधुनिक पोषण जागरूकता और सामुदायिक भागीदारी की आवश्यकता

आधुनिक आहार में विटामिन, खनिज, और प्रोटीन की कमी देखी जाती है, जिससे कुपोषण और अन्य स्वास्थ्य समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। पोषण जागरूकता के बिना, लोग सिर्फ स्वाद या सुविधा के लिए गलत प्रकार के भोजन का चुनाव कर रहे हैं। प्रसंस्कृत भोजन और प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों के बढ़ते उपयोग से पर्यावरण पर नकारात्मक प्रभाव पडता है। यह खाद्य उत्पादन के लिए अधिक संसाधनों की मांग करता है और अधिक प्रदूषण फैलाता है।

पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए सामुदायिक भागीदारी भी महत्वपूर्ण है। सामुदायिक बागवानी और पोषण शिक्षा कार्यक्रमों के माध्यम से लोग ताजा और पोषणयुक्त खाद्य पदार्थ प्राप्त कर सकते हैं। समुदायों में सामुदायिक बागवानी कार्यक्रम शुरू करें, जिससे लोग अपने घरों के पास सब्जियाँ उगा सकें। यह न केवल लागत कम करता है, बल्कि ताजी सब्जियाँ भी प्रदान करता है। स्थानीय स्वास्थ्य संगठनों द्वारा पोषण शिक्षा कार्यक्रमों का आयोजन करें, ताकि समुदाय के लोग पोषण के महत्व और स्वस्थ आहार विकल्पों के बारे में जागरूक हो सकें। साथ ही, सरकारी योजनाएँ भी कमजोर समूहों में संतुलित पोषण को बढावा देने में अहम भूमिका निभा रही हैं। मध्याह्न भोजन योजना, यह बच्चों की कैलोरी और पोषण आवश्यकताओं को पूरा करता है। इसका मुख्य उद्देश्य कुपोषण को कम करना और बच्चों के शारीरिक और मानसिक विकास को बढ़ावा देना है। आँगनवाड़ी सेवाएँ, पोषण अभियान जैसी सरकारी योजनाएं कमजोर समूहों में संतुलित पोषण को बढ़ावा देने के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। इन योजनाओं का उद्देश्य कुपोषण को कम करना, बच्चों और गर्भवती महिलाओं में पोषण स्तर को सुधारना, और स्वस्थ जीवनशैली को बढ़ावा देना है। राष्ट्रीय पोषण नीति का उद्देश्य देश में कुपोषण को समाप्त करना और सभी नागरिकों के लिए संतुलित पोषण सुनिश्चित करना है।

2. भारत सरकार की नितियां

राष्ट्रीय पोषण मिशन और ईट राइट इंडिया जैसे अभियानों के माध्यम से लोगों को पोषण सुरक्षा के प्रति जागरूक करने और उन्हें स्वस्थ खाने की आदतों की ओर प्रेरित करने का प्रयास किया है। राष्ट्रीय पोषण मिशन का उद्देश्य 6 वर्ष तक के बच्चों, किशोरियों, गर्भवती महिलाओं और धात्री माताओं की पोषण स्थिति में सुधार लाना है। इसके तहत स्टंटिंग, अल्प–पोषण, और एनीमिया जैसी समस्याओं को कम करने के लिए काम किया जा रहा है।

बच्चों (0–6 वर्ष) गर्भवती, और स्तनपान कराने वाली महिलाओं के पोषण और स्वास्थ्य पर ध्यान केंद्रित करती हैं। यह योजना पोषण स्तर में सुधार, स्वास्थ्य जागरूकता, और सामुदायिक विकास के लिए कार्यरत है। आँगनवाड़ी केंद्रों पर बच्चों को पोषणयुक्त आहार, स्वास्थ्य जांच, और शिक्षा प्रदान की जाती है। इन केंद्रों का उद्देश्य कुपोषण को रोकना और बच्चों के स्वास्थ्य में सुधार लाना है।

संदर्भः

1. राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण– 2019–21
2. विश्व स्वास्थ्य संगठन

चने की फसल में एकीकृत कीट एवं रोग प्रबंधन

आकांक्षा[1], अंकित राय[2], नवीन कुमार[3], एवं डी.वी. सिंह[4]

[1,4]सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रोद्योगिकी विश्वविद्यालय, मोदीपुरम, मेरठ

[2]आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या

[3]नेशनल पोस्ट ग्रैजुएट कॉलेज बड़हलगंज, गोरखपुर, (उ.प्र.)

चना (काबुली चना और देसी चना) भारतवर्ष की प्रमुख दलहनी फसलों में से एक है, जिसे इसके पौष्टिक गुणों, उच्च प्रोटीन सामग्री, और विविध उपयोगों के कारण प्रमुखता दी जाती है। यह फसल, जो मुख्य रूप से ठंडे और शुष्क मौसम में उगाई जाती है, देश में सबसे अधिक प्रचलित खाद्य पदार्थों में से एक है। इसके बीजों में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, विटामिन, और खनिज तत्व प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं, जिससे यह मानव आहार के लिए अत्यधिक लाभकारी साबित होता है। पिछले कुछ दशकों में उन्नत किस्मों के विकास और तकनीकी सुधारों के कारण चने की उत्पादकता में काफी वृद्धि हुई है, लेकिन यह अभी भी जैविक और अजैविक कारकों जैसे रोग, कीट, और जलवायु परिवर्तन से प्रभावित होती है, जिससे इसके उत्पादन में 20–25% तक की हानि होती है।

चना में लगने वाले प्रमुख जैविक कारकों में कीट और रोग सबसे बड़ी चुनौती हैं, जो पौधों को विभिन्न अवस्थाओं पर प्रभावित करते हैं और किसानों के लिए बड़े नुकसान का कारण बनते हैं। इनमें से कुछ प्रमुख कीट और उनके प्रबंधन के तरीके निम्नलिखित हैं:

चना की खेती में कई कीट फसल को गंभीर नुकसान पहुँचाते हैं, जिनमें मुख्यतः चना फली भेदक, दीमक, सेमीलूपर, कटुआ कीट और घुन शामिल हैं। इनकी समय पर पहचान और प्रबंधन से फसल की उत्पादकता और गुणवत्ता को बनाए रखा जा सकता है। आइए इनके प्रकोप और प्रबंधन विधियों पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से चर्चा करें।

चने में लगने वाले प्रमुख कीट

1. चना फली भेदक (*हेलिकोवर्पा आर्मीजेरा*)

चना फली भेदक, चना फसल पर सबसे अधिक हानि पहुँचाने वाला एक प्रमुख कीट है, जो लगभग 181 प्रकार की फसलों और 48 प्रकार के खरपतवारों पर आक्रमण करता है। यह कीट बहुभक्षी प्रवृत्ति का है और पत्तियों, कलियों और विशेषकर फलियों को नुकसान पहुंचाता है। इस कीट की सूंडियां छोटे पीले, नारंगी, गुलाबी, स्लेटी या काले रंग की होती हैं और कोमल पत्तियों, कलियों और फलियों में छेद बनाकर बीजों को खाती हैं। एक सूंडी अपने जीवनकाल में 30 से 35 चने के दाने खा सकती है, जिससे उत्पादन में 12–14 प्रतिशत तक हानि होती है।

प्रबंधन उपायः

- **गहरी जुताईः** गर्मियों में खेत की गहरी जुताई करें, जो कीट की संख्या को नियंत्रित करने में सहायक होती है।
- **अन्तः फसल और फसल चक्रः** चने की फसल के साथ सरसों या अलसी की अंतः फसल लगाने से प्रकोप कम किया जा सकता है।
- **प्राकृतिक शत्रुः** कीटभक्षी पक्षियों के बैठने के लिए खेत में 35–40 टी (T) आकार के अड्डे प्रति हेक्टेयर लगाएं।
- **यौन आकर्षण जालः** 4–5 प्रति हेक्टेयर यौन आकर्षण जाल का प्रयोग करें और कीट संख्या का नियमित आंकलन करें। यदि जाल में लगातार 4–5 रातों तक चना फली भेदक के नर पतंगे दिखें, तो तुरंत प्रबंधन उपाय अपनाएं।
- **बायोपेस्टिसाइड्सः** एच.ए.एन.पी.वी. का 250 एल.ई. प्रति हेक्टेयर छिड़काव करें। इसमें 0.5% गुड़ और 0.01% तरल साबुन मिलाने से प्रभाव में वृद्धि होती है।
- **कीटनाशकः** इंडेक्सोकार्ब, स्पाइनोसैड और इमामेक्टिन बेन्जोएट जैसे कीटनाशकों का उपयोग तभी करें जब

प्रकोप अत्यधिक हो और अन्य विधियों से नियंत्रण संभव न हो।

2. दीमक

दीमक, जिसे श्वेत चींटी भी कहा जाता है, मृदा में झुंडों में रहने वाला कीट है। यह पौधों की जड़ों को काटकर अंदर तक पहुँचकर फसल को प्रभावित करता है। बलुई और बलुई दोमट मृदा में इसका प्रकोप अधिक देखा जाता है, विशेषकर बुवाई और अंकुरण के बाद पौध अवस्था में।

प्रबंधन उपायः

- **बीज उपचारः** क्लोरोपायरीफास 20 ई.सी. की 1.0 लीटर मात्रा से प्रति 100 किलोग्राम बीज का शोधन करें।
- **भूमि उपचारः** जुताई के समय लिंडेन धूल 25 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से मृदा में मिलाएं।
- **पौध संरक्षणः** प्रभावित पौधों की जड़ों के पास 0.05% क्लोरोपायरीफास का घोल छिड़कें, या 4 लीटर क्लोरोपायरीफास प्रति हेक्टेयर सिंचाई के पानी के साथ दें।

3. सेमीलूपर (*आटोग्राफा निग्रिसिग्ना*)

सेमीलूपर के हरे रंग की गिड़ारें चने की कोमल पत्तियों, कलियों और फलियों को नुकसान पहुंचाती हैं। यह कीट मुख्यतः उत्तर भारत में प्रचलित है। यह कीट पौधे के बड़े होने पर फलियों को लगभग पूरी तरह खा जाता है, जिससे केवल डंठल ही बचते हैं।

प्रबंधन उपायः

- **बायोपेस्टिसाइड्सः** बैसिलस थूरिजिएन्सिस की कर्स्टकी प्रजाति का 1 किग्रा प्रति हेक्टेयर छिड़काव करें।
- **कीटनाशकः** इमामेक्टिन बेंजोएट और स्पाइनोसैड का छिड़काव 500–600 लीटर पानी में मिलाकर प्रति हेक्टेयर करें।

4. कटुआ कीट (*एग्रोटिस इंपसिलॉन*)

कटुआ कीट या कट वर्म चने की फसल के लिए हानिकारक होता है, विशेष रूप से उन क्षेत्रों में जहाँ बुवाई से पहले पानी भरा रहता है। यह रात में सक्रिय होकर पौधों की सतह से काटता है और पौधों को जमीन पर गिरा देता है।

प्रबंधन उपायः

- **गहरी जुताईः** गर्मियों में एक गहरी जुताई करें जिससे मृदा में सुसुप्त अवस्था में पड़े प्यूपा नष्ट हो जाते हैं।
- **बीज उपचारः** क्लोरोपायरीफॉस 20 ई.सी. से 1.0 लीटर प्रति 100 किग्रा बीज का शोधन करें।
- **खड़ी फसल में छिड़कावः** 0.05% क्लोरोपायरीफास का घोल प्रभावित पौधों के पास छिड़कें।

5. घुन

चना के भंडारण के समय घुन का प्रकोप एक बड़ी समस्या होती है, खासकर काबुली चने में। घुन का प्रकोप दानों की नमी से संबंधित है, और भंडारण में दालों को नुकसान पहुंचाता है।

प्रबंधन उपायः

- **धूप में सुखानाः** भंडारण से पहले दानों को अच्छी तरह साफ करके सूखा लें ताकि नमी का स्तर 8–10% रहे।
- **तेल उपचारः** सरसों या नारियल तेल से 10 मि.ली. प्रति किलोग्राम बीज का उपचार करें।
- **फ्यूमिगेशनः** अमोनियम फॉस्फेट टिकिया का उपयोग प्रति टन दाने पर करें, और संभव हो तो दानों की जगह दाल को ही भंडारण करें।

इन प्रबंधन उपायों के साथ चना की फसल को कीटों के प्रकोप से बचाकर उत्पादन में सुधार किया जा सकता है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण और फसल सुरक्षा के नए उपायों को अपनाने से फसल को इन प्रमुख कीटों से सुरक्षित रखा जा सकता है।

चने में लगने वाले सूत्रकृमि

सूत्रकृमि जड़ तंतुओं के कार्यों में बाधा डालते हैं, जिससे जड़ें मिट्टी से आवश्यक पोषक तत्व और पानी को उचित रूप से अवशोषित नहीं कर पातीं। इसके कारण पौधे के वायवीय भागों में पोषण की कमी, सूखा, लवणीयता और

अन्य प्रतिकूल परिस्थितियों के समान लक्षण उत्पन्न होते हैं। अधिक प्रकोप होने पर पौधों के फूल, फलियाँ और दाने बनने की प्रक्रिया बाधित हो जाती है। सूखे और बलुई मृदा में विशेषकर सूत्रकृमि का प्रकोप ज्यादा होता है, जिससे चना की उत्पादकता पर गहरा असर पड़ता है।

प्रबंधन के उपाय

- **गहरी जुताईः** ग्रीष्म ऋतु में खेत की गहरी जुताई करने से मृदा में स्थित सूत्रकृमियों की संख्या को काफी हद तक नियंत्रित किया जा सकता है। गहरी जुताई से मृदा में मौजूद सूत्रकृमि गर्मी के संपर्क में आकर मर जाते हैं।
- **फसल चक्र और अंतःफसलः** चना के साथ सरसों को 6:2 पंक्ति अनुपात में अंतःफसल के रूप में लगाना, या मक्का, बाजरा, ज्वार, ग्वार, उर्द, मूंग और सोयाबीन जैसी फसलों को चना के फसल चक्र में शामिल करना सूत्रकृमि की संख्या को 60 प्रतिशत तक कम कर सकता है। यह न केवल सूत्रकृमि की आबादी को कम करता है बल्कि चना की फसल पर सकारात्मक प्रभाव डालता है।
- **रासायनिक उपचारः** जड़ ग्रंथि सूत्रकृमि और लेजन सूत्रकृमि को नियंत्रित करने के लिए कार्बोसल्फान, कार्बोफ्यूरान, फेनोफॉस, एल्डीकार्ब, बन्डीकार्ब, और डायाजिनॉन जैसे रसायनों का 1–3 प्रतिशत सक्रिय तत्व के साथ बीजोपचार उपयोगी है। यह उपचार पौधे की प्रारंभिक अवस्था में सूत्रकृमि के हमलों से बचाने में सहायक होता है।
- **जैविक नियंत्रणः** जैव नियंत्रक पीसिलोमाइसीज लिलेसिनस सी.आई.पी. का 0.2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज पर उपचार जड़ ग्रंथि और लेजन सूत्रकृमि के प्रबंधन में प्रभावी पाया गया है। यह पर्यावरण–अनुकूल विकल्प है और मृदा जैव विविधता को भी संरक्षित रखता है।
- **सूत्रकृमि प्रतिरोधी किस्मों का चयनः** उन चने की प्रजातियों का चयन करें जो सूत्रकृमि प्रतिरोधी हों। इससे फसल पर सूत्रकृमियों के हमले की संभावना कम होती है और उत्पादन क्षमता बढ़ती है।

भारत में चना की उत्पादकता पर नकारात्मक असर डालने वाले सूत्रकृमियों के प्रति सतर्कता और वैज्ञानिक प्रबंधन के उपाय अपनाकर किसान अपनी फसल की पैदावार और गुणवत्ता दोनों में सुधार कर सकते हैं। इन उपायों के सहारे चना की उत्पादकता को बढ़ाया तथा मृदा स्वास्थ्य को भी सुरक्षित रखा जा सकता है।

चने में लगने वाले प्रमुख रोग

1. उकठा रोग

चने का यह रोग सबसे घातक माना जाता है, जो फ्यूजेरियम ऑक्सीस्पोरम फफूँद के कारण होता है। यह एक मृदा और बीज जनित बीमारी है, जिससे फसल की पैदावार में 10–12 प्रतिशत तक की कमी हो सकती है। यह फफूँद मिट्टी में लगभग छह वर्षों तक जीवित रह सकती है, जिससे यह रोग नियंत्रण में कठिन हो जाता है। यह पौधों को बुवाई के 30–40 दिनों के बाद अधिक प्रभावित करता है और फूल आने के समय, जब तापमान 25–30% सेल्सियस होता है, तेजी से फैलता है।

- **लक्षणः** उकठा रोग से ग्रसित पौधों की पत्तियाँ पीली पड़ने लगती हैं, मुरझाने लगती हैं, और धीरे–धीरे पौधे सूख जाते हैं। तनों के निचले भाग में संवहन ऊतकों का रंग भूरा या काला हो जाता है, और जड़ों में भी कालेपन का असर दिखता है।
- **प्रबंधनः** इस रोग के नियंत्रण के लिए उकठा प्रतिरोधी प्रजातियों का चयन करें। बुवाई का समय अक्टूबर के अंत या नवंबर के पहले सप्ताह में रखें। गर्मी के मौसम में खेत की गहरी जुताई से रोग का प्रकोप कम होता है। चना के साथ सरसों या अलसी की अन्तः फसल लेना भी रोग नियंत्रण में सहायक है। बीजों का उपचार फफूँदनाशी जैसे कार्बेन्डाजिम या कार्बोक्सिन (3 ग्राम), थीरम (2 ग्राम), और ट्राइकोडर्मा विरीडी (4 ग्राम प्रति किलो बीज) के साथ करें।

2. शुष्क मूल विगलन रोग

यह रोग मुख्य रूप से फसल की परवर्ती अवस्था में प्रकट होता है और पौधों के लिए अत्यधिक हानिकारक

साबित होता है। यह *राइजोक्टोनिया बटाटीकोला* नामक कवक के कारण होता है, जो सूखी मिट्टी और 30% सेल्सियस से अधिक तापमान पर तीव्रता से फैलता है।

- **लक्षण:** इस रोग के कारण पौधों की पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं और धीरे–धीरे पौधे सूख जाते हैं। जड़ें सख्त हो जाती हैं, और रोगी पौधों की जड़े नष्ट हो जाती हैं। जड़ों पर काले रंग के बीजाणु भी देखे जा सकते हैं।
- **प्रबंधन:** इस रोग के नियंत्रण के लिए संस्तुत रोग प्रतिरोधी प्रजातियों का चयन करें। गर्मी में खेत की 2–3 बार गहरी जुताई करने से मृदा जनित रोगों का प्रकोप कम होता है। बीज उपचार के लिए कार्बेन्डाजिम (1 ग्राम प्रति किलो बीज) अथवा कार्बोक्सिन, थीरम, और ट्राइकोडर्मा विरीडी का मिश्रण प्रभावी है।

3. धूसर फफूँद (*बोट्राइटिस*)

चने की फसल में यह रोग मुख्यतः फूल आने के समय *बोट्राइटिस साइनेरिया* नामक कवक से फैलता है। भारत के तराई क्षेत्र, बिहार के ताल क्षेत्र, और उन इलाकों में जहां आर्द्रता अधिक है, इस रोग का प्रकोप पाया जाता है।

- **लक्षण:** जब वातावरण में अधिक आर्द्रता और तापमान कम हो तो यह रोग तेजी से फैलता है। संक्रमित पौधों के पत्तों, शाखाओं, डंडियों और फूलों पर भूरे या काले रंग के धब्बे उभर आते हैं। पौधे के फूल झड़ने लगते हैं और फलियाँ नहीं बनतीं, जिससे उत्पादन पर नकारात्मक असर पड़ता है। संक्रमित फलियों में दाने सिकुड़े हुए होते हैं, जिन पर सफेद और भूरे रंग के कवक तंतु दिखाई देते हैं।
- **प्रबंधन:** इस रोग को नियंत्रित करने के लिए पौधों के बीच उचित दूरी बनाएँ ताकि हवा और प्रकाश का संचरण हो सके। रोग ग्रस्त क्षेत्रों में पंक्तियों के बीच पर्याप्त दूरी रखें और बुवाई देर से करें। कवकनाशी जैसे मेंकोज़ेब या क्लोरोथैलोनिल का 2 ग्राम प्रति लीटर पानी के साथ छिड़काव रोग को नियंत्रित करने में सहायक है।

4. चाँदनी (*एस्कोकाइटा अंगमारी*)

यह रोग एस्कोकाइटा रेबि नामक फफूँद से फैलता है और विशेष रूप से उत्तर भारत के ठंडे और आर्द्र स्थानों में पाया जाता है। पौधे की परिपक्व अवस्था में इसका प्रकोप अधिक होता है।

- **लक्षण:** यह रोग पौधे के सभी वायवीय हिस्सों पर होता है, जिसमें पत्तियों पर गोल भूरे धब्बे दिखाई देते हैं, जबकि डंठलों पर ये धब्बे लंबे और गहरे रंग के हो जाते हैं। इसके बढ़ने पर तनों और शाखाओं का ऊपरी भाग मुरझाकर पौधा धीरे–धीरे सूख जाता है।
- **प्रबंधन:** इस रोग के प्रबंधन के लिए क्षेत्र आधारित रोग प्रतिरोधी किस्मों का चयन करें, जैसे जीएनजी 469, पीबीजी–7 आदि। संक्रमित पौधों के अवशेषों को खेत से बाहर निकालें और जला दें। कवकनाशी जैसे थीरम, बीनोमाइल, और कैप्टान का बीज उपचार करने से रोग का प्रकोप कम होता है। प्रोपिकोनाजोल का छिड़काव भी फायदेमंद साबित होता है।

5. स्तम्भ मूल संधि विगलन

यह रोग *स्क्लेरोशियम रॉल्फसी* नामक कवक के कारण होता है, जो विशेष रूप से सिंचित क्षेत्रों और उन जगहों पर होता है, जहां मृदा में नमी और उच्च तापमान होता है।

- **लक्षण:** अंकुरण के समय से लेकर एक महीने तक पौधे इस रोग से प्रभावित होते हैं। तने का जड़ से लगा हिस्सा पतला और भूरा होकर सड़ने लगता है, जिससे पौधे पीले होकर मुरझा जाते हैं। तनों पर सफेद कवक तंतु और राई के आकार के बीजाणु दिखते हैं।
- **प्रबंधन:** बुवाई से पहले खेत को गहरी जुताई और गोबर की खाद का प्रयोग करें। फसल चक में अनाजीय फसलों को सम्मिलित करना रोग नियंत्रण में सहायक होता है। बीजों का वीटावैक्स या कार्बेन्डाजिम से उपचार करने से संक्रमण को रोका जा सकता है।

चना उत्पादन के क्षेत्र में इन रोगों का प्रबंधन, उन्नत किस्मों का चयन, समय पर फसल चक्र अपनाने और बीज उपचार जैसी प्रबंधन तकनीकों के सहारे किया जा सकता है, जिससे फसल की उत्पादकता में बढ़ोतरी और किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार सुनिश्चित किया जा सकता है।

बीजोपचारः कृषि में खुशहाली के लिए सफल कुंजी

रविश चौधरी, धर्मपाल सिंह एवं ज्ञान प्रकाश मिश्र
भा.कृ.अनु.प.—भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली—110 012

हमारे देश में ऐसे छोटे—छोटे जोत वाले किसानों की संख्या बहुत ज्यादा है। जिनका जीवन—यापन का प्रमुख साधन खेती ही है। जो बिना बीज उपचार किये ही सीधे फसल की बुआई कर देते है। जिनसे किसानों को फसल उत्पादन लागत बढ़ जाती है। आधुनिक समय मे खाधान्न की मांग लगातार बढ़ती जा रही है तथा आपूर्ति के संसाधन घटते जा रहे है। विज्ञान के नवीन उपकरणों, तकनीकों तथा प्रयोगों से किसानों की स्थिति मे सुधार हुआ है। नवीन तकनीकों के प्रयोग करने से उनकी जीवन शैली में तीव्र बदलाव आये है। इन्ही में से एक तकनीक बीचोपचार है। जिसको सुनियोजित तरीके से अपनाने से खेती की उत्पादकता बढ़ सकती है। बीजोपचार एक सस्ती तथा सरल तकनीक है, जिसे अमल में लाने से किसान भाई बीज जनित, मृदा जनित रोगों एवं पोषक तत्वों की आपूर्ति में वृद्धि से अपनी फसल को खराब होने से बचा सकते हैं। इस तकनीक द्वारा बीज को बोने से पहले फफूंदनाशी, कीटनाशी और जीवाणु का उपयोग करके उपचारित करते हैं। भारत एक उष्ण कटिबंधीय प्रदेश है। उष्ण प्रदेश होने के कारण यहाँ रोगों एवं कीटों का प्रकोप अधिक होता है जिससे की उपज को बहुत अधिक नुकसान होता है। उन्नत प्रजातियों के प्रयोग, पर्याप्त उर्वरक देने व सिंचाई के अतिरिक्त यदि पौध संरक्षण के उचित उपाय न किये जाये तो फसल की अधिकतम उपज नही मिल सकती है। बीज की गुणवत्ता को बनाये रखने के लिए बीजोपचार करना अति मत्वपूर्ण है, जैसे बच्चे को सही समय पर टीका नहीं लगने पर जीवन भर बहुत सारे बीमारियों का खतरा बना रहता है वैसे ही अगर पौधे का टीकाकरण जो की यहाँ पर बीजोपचार से है, ना किया जाये तो बहुत सारे रोगों के आक्रमण होने का भय बना रहता है।

बीजोपचार करने के लिए कुछ महत्वपूर्ण विधियाँ (चित्र 1 एवं 2) निम्नलिखित हैः—

1. फफूंदी और जीवाणुओं द्वारा बीजोपचारः

इस विधि मे सुक्ष्म परजीवीनाशी जैसे *ट्राइकोड्रमा विरिडी, ट्राइकोड्रमा हारजिएनम, स्यूडोमोनास, फ्लोरेसेंस* इत्यादि जीवाणुओं का उपयोग करके बीज को उपचारित करते हैं।

2. स्लरी बीजोपचारः

यह समय की बचत वाली विधि होती है। इस विधि से बीज की बुआई के लिए जल्दी तैयार हो जाते है। इसमें अनुशंसित मात्रा के साथ थोड़ा पानी मिलाकर पेस्ट बना लेते हैं। इस पेस्ट को बीज पर मिलाकर छाया में सुखा लेते हैं सूखे हुए बीजो से यथाशीघ्र बुआई करते हैं। इस विधि द्वारा बीज कम समय में बुआई के लिए जल्दी तैयार हो जाते हैं।

3. सूखा बीजोपचारः

इस विधि में बीज को अनुशंसित मात्रा के साथ सीड ड्रेसिंग ड्रम में डालकर अच्छी तरह हिलाते हैं जिससे दवा का कुछ भाग प्रत्येक बीज पर चिपक जाए। सीड ड्रेसिंग ड्रम का उपयोग तब करते है, जब बीज की मात्रा ज्यादा होती है। अगर बीज सीमित मात्रा में है तो सीड ड्रेसिंग ड्रम के स्थान पर मिट्टी के घड़े का प्रयोग भी कर सकते हैं। सीड ड्रेसिंग ड्रम या मिट्टी के घड़े में बीज की मात्रा दो तीहाई से ज्यादा नहीं भरनी चाहिए।

4. भीगा बीजोपचारः

इस विधि का उपयोग सब्जियों के बीजों के लिए ज्यादा फायदेमंद होता है। इस विधि में अनुशंसित मात्रा को पानी में घोल बना कर बीज को कुछ समय के लिए

चित्र 1: बीजोपचार करने की विधियाँ

उसमें छोड़ देते हैं तथा कुछ समय पश्चात् छायादार स्थान में 6–8 घंटे सुखाकर यथाशीघ्र बुआई करते हैं।

5. गर्म जल द्वारा बीजोपचारः

यह विधि जीवाणु, फफूंद एवं विषाणुओं की रोकथाम के लिए ज्यादा लाभदायक है। इस विधि में बीज या बीज के रुप में प्रयोग होने वाले पादप भाग जैसे कंद आदि को 52–54 डिग्री तापमान पर 15 मिनट तक रखते हैं। जिससे रोगजनक नष्ट हो जाते हैं लेकिन बीज अंकुरण पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता है। इस विधि द्वारा धान का बीजोपचार भी किया जाता है।

6. सूर्यताप द्वारा बीजोपचारः

यह विधि गेहूँ, जौ एवं जई जिनमें अनावृत कंडवा रोग लगता है, उसके नियंत्रण के लिए लाभदायक है। इस विधि में बीज को पानी में कुछ समय (3–4 घंटे) के लिए भिगोते हैं और फिर सूर्यताप में 4 घंटे तक रखते हैं जिससे बीज के आंतरिक भाग में रोगजनक का कवकजाल नष्ट हो जाता है। रोगजनक को नष्ट करने के लिए रोगजनक की सुप्तावस्था को तोड़ना होता है, जिससे रोगजनक नाजुक अवस्था में आ जाता है, जो कि सूर्य की गर्मी द्वारा नष्ट किया जा सकता है। यह विधि गर्मी के महीने (मई–जून) में कारगर पाई गई है।

7. राईजोबियम कल्चर द्वारा बीजोपचारः

इस विधि द्वारा खरीफ की पाँच मुख्य फसलों (अरहर, उड़द, मूँग, सोयाबीन एवं मूँगफली) तथा रबी की तीन दलहनी फसलों (चना, मसूर तथा मटर) को राईजोबियम कल्चर से बीजोपचारित कर सकते हैं। 100 ग्राम कल्चर आधा एकड़ जमीन में बोये जाने वाले बीजों को उपचारित करने के लिए प्रर्याप्त होता है। इस विधि में 1.5 लीटर पानी में लगभग 100 ग्राम गुड़ डालकर खूब उबाल लेते है। ठण्डा होने पर एक पैकेट कल्चर डालकर अच्छी तरह मिला लेते हैं। इस कल्चरयुक्त घोल के साथ बीजों को इस तरह मिलाते हैं कि बीजों पर कल्चर की एक परत चढ़ जाए। उपचारित बीजों को छाया में सुखा कर यथाशीघ्र बुआई करते हैं।

विभिन्न फसलों मे बीजोपचार के लिए अनुशंसाः

वैसे तो भारत सरकार ने अभी कुछ ही दिनों पहले कई कीटनाशीयों के प्रयोग को बंद करने का एक ड्राफ्ट तैयार किया है जिसके लिए 45 दिनों का समय दिया है, कि अगर किसी को इस संदर्भ में याचिका देकर सरकार के फैसले को चुनौती देनी है तो वे ऐसा तर्क के साथ कर सकते हैं। परंतु इस प्रक्रिया में समय लगने की संभावना है और आज की तारीख में नीचे तालिका में वर्णित संस्तुति को किसान भाई अपना सकते हैं।

अनुपचारित गेहूं का बीज

कार्बोक्सिन एवं थिरम (2.5 ग्राम/किग्रा) उपचारित बीज

गेहूं का उपचारित बीज

चित्र 2: कम मात्रा में बीज के उपचार का दृश्य, खासकर प्रयोगात्मक उपयोग के लिए।

धान्य फसलें

क्रं सं	फसल का नाम	प्रमुख रोग एवं कीट	रसायन/ जैवनाशी का नाम	रसायन/ जैवनाशी (ग्राम/किलो बीज)
1	गेहूं	अनावृत कंड	कार्बोक्सिन 37.5% + थीरम 37.5%	2.5
		अल्टरनेरिया पत्र लांछन हेल्मिन्थोस्पोरियम अंगमारी	कार्बेन्डाजिम	2.0
		दीमक	क्लोरपाईरिफॉस 20 ई सी	5.0 मि ली.

क्रं सं	फसल का नाम	प्रमुख रोग एवं कीट	रसायन/ जैवनाशी का नाम	रसायन/ जैवनाशी (ग्राम/किलो बीज)
2	धान	झुलसा/ब्लास्ट, पत्र लांछन भूरी चित्तीं रोग	कार्बेन्डाजिम/कैप्टान/कार्बोक्सिन 37.5% + थीरम 37.5%	2.0
		जीवाणु पर्ण अंगमारी	स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस 0.5% डब्लू पी	10.0
3	अरहर चना मसूर मूंग	दीमक	क्लोरपाईरिफॉस 20 ई सी	5.0 मि ली
		उकठा	कार्बेन्डाजिम/थीरम	2.0
		झुलसा	ट्राईकोडर्मा विरिडी 1% डब्लू पी	10.0
4	मक्का	दीमक	क्लोरपाईरिफॉस 20 ई सी	5.0 मि ली
5	मूंगफली	हेल्मिन्थोस्पोरियम अंगमारी, शीथ अंगमारी,	थीरम/कैप्टान	3.0
6	सरसों	बीज सड़न, तना सड़न, जड़ सड़न	कार्बेन्डाजिम/थीरम	2.0/3.0
7	तीसी	श्वेत किट्ट/सफ़ेद रतुआ	कार्बेन्डाजिम/थीरम	2.0/3.0
8	गन्ना	उकठा रोग लाल सड़न रोग	थीरम	3.0
			कार्बेन्डाजिम/थीरम	2.0/3.0
			ट्राईकोडर्मा विरिडी 1% डब्लू पी	10.0

साग – सब्जियां फसलें

क्रं सं	फसल का नाम	प्रमुख रोग एवं कीट	रसायन/जैवनाशी का नाम	रसायन/जैवनाशी (ग्राम/किलो बीज)
1	गाजर, प्याज़, मूली	बीज एवं मृदा जनित रोग	कार्बेन्डाजिम	2.0
2	बैंगन	जीवाणु मुरझा रोग	स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस 0.5% डब्लू पी	10.0
3	शिमला मिर्च	जड़ सूत्रकृमि	स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस 0.5% डब्लू पी	10.0
4	मटर	उकठा रोग	थीरम/कैप्टान	3.0
5	भिन्डी	उकठा रोग	थीरम/कैप्टान	3.0
6	गोभी	मृदुरोमिल आसिता	कार्बेन्डाजिम	2.0
		बीज एवं मृदा जनित रोग	ट्राईकोडर्मा विरिडी 1% डब्लू पी	4.0–5.0
		जड़ सूत्रकृमि	स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस 0.5% डब्लू पी	10.0
7	आलू	मृदा एवं कंद जनित रोग,	मेटालैक्सिल + मेंन्कोज़ेब	2.5
8	टमाटर	उकठा	कार्बेन्डाजिम/थीरम	2.0/3.0
9	मिर्च	मृदा जनित रोग	ट्राईकोडर्मा विरिडी 1% डब्लू पी	4.0–5.0
		जैसिड्स, एफिड्स, थ्रिप्स	इमिडाक्लोप्रीड 70 डब्लू एस	2.0

पौध/बिचड़ा का उपचार:

इस विधि द्वारा मुख्यतः धान, टमाटर, बैंगन, गोभी, मिर्च इत्यादि के पौधों को जीवाणुजनित एवं फफूंद द्वारा होने वाले रोगों से बचाया जाता है। इस विधि में रोपाई से पहले पौधों की जड़ों को एंटीवायोटिक/फफूंदनाशी (स्ट्रेप्टोसाईक्लिन/कॉपर ऑक्सीक्लोराइड) के घोल में डुबो कर उपचारित करते हैं।

बीज उपचारित करने का क्रम:

बीज उपचारित करने के लिए एफ.आई.आर. (फफूंदनाशकः कीटनाशकः राईजोबियम कल्चर) क्रम याद रखना चाहिए (चित्र 3)। बीज को सर्वप्रथम फफूंदनाशी से उसके बाद कीटनाशी से (2 घंटे बाद) और अन्त में राईजोबियम कल्चर से (4 घंटे बाद) उपचारित करें। कवकनाशी, कीटनाशी तथा जैविक नियंत्रण क्रम गैर दलहनी फसलों पर लागू करनी चाहिए।

चित्र 3: बीज उपचारित करने का क्रम

सावधानियाँ:

- बीज उपचारित करने के लिए निर्धारित मात्रा का ही प्रयोग करें।
- बीजोपचार करने के बाद बीज को छायेदार जगह में ही सुखाएं।
- रसायनों के प्रयोग से पहले उसकी समाप्ति तिथि की जाँच अवश्य कर लें।
- उपचार के बाद डिब्बों तथा थैलों को मिट्टी के अंदर अवश्य दबा दें तथा अच्छी तरह साबुन से हाथ धो लें।
- रसायनों को बच्चों तथा मवेशियों की पहुंच से दूर रखें।
- रसायनों के प्रयोग के समय न तो कुछ खायें, न ही धूम्रपान करें।
- दवा को उसके मूल डिब्बे में रखें तथा उसका लेबल खराब न होने दे। खाद्य, जल या पेयपदार्थो के डिब्बों में कीटनाशक रसायनों को न भरें।

निष्कर्ष:

बीजोपचार एक सस्ती तथा सरल विधि है। कोई भी किसान भाई बड़ी आसानी से इस विधि को अपना सकते हैं। रसायनिक पदार्थो का प्रयोग इस विधि में कम से कम होता है। बीजोपचार करने से बाद में खड़ी फसल को सुरक्षा के अन्य उपायों की कम आवश्यकता पड़ती है इसलिए यह एक पर्यावरण अनुकूल तकनीक है। फसल उत्पादन में इस विधि द्वारा किसान भाईयों को 15–20 प्रतिशत तक मुनाफा मिलता है। इन तथ्यों से यह निष्कर्ष निकलता है कि किसानो की खुशहाली में उन्नत बीज का जितना अहम योगदान है उतना ही अहम योगदान बीजोपचार का भी हैं। अतः बीजोपचार बीजोत्पादन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

गेहूं की फसल में समेकित कीट प्रबंधन

नवीन कुमार[1], अंकित राय[2], आकांक्षा[3] एवं समीर कुमार सिंह[4]
[1]नेशनल पोस्ट ग्रैजुएट कॉलेज बड़हलगंज, गोरखपुर, (उ.प्र.)
[2,4]आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या
[3]सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, मोदीपुरम, मेरठ

भारत में गेहूं को एक अत्यंत महत्वपूर्ण अनाज फसल के रूप में स्थान प्राप्त है, और यह विशेष रूप से उत्तर–पश्चिमी क्षेत्रों में खाद्य सुरक्षा का प्रमुख आधार है। वैश्विक स्तर पर भारत का गेहूं उत्पादन में योगदान लगभग 14% है, जिससे यह चीन के बाद दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक बन जाता है। यह भारतीय कृषि के परिदृश्य में गेहूं की अहमियत को दर्शाता है और वैश्विक स्तर पर इसके उत्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

गेहूं (*ट्रिटिकम एस्टिवम एल.*) घास परिवार (पोएसी) का एक महत्वपूर्ण सदस्य है और अपने पोषण और बहुपयोगिता के कारण विश्वभर में एक महत्वपूर्ण खाद्य स्रोत माना जाता है। इसे व्यापक रूप से आटे के उत्पादन के लिए उगाया जाता है, जो ब्रेड, पास्ता, और अन्य खाद्य पदार्थों के निर्माण में प्रयोग होता है। खेती की दृष्टि से इसकी किस्मों को मुख्य रूप से शीतकालीन और वसंत गेहूं के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है।

गेहूं का जीवनचक्र अंकुरण से प्रारंभ होकर पुष्पण, अनाज विकास और अंततः कटाई तक कई जैविक चरणों से होकर गुजरता है। लेकिन, हाल के वर्षों में विभिन्न कीटों के आक्रमण से गेहूं उत्पादन में कमी देखी जा रही है, जिसमें दीमक, गुलाबी तना छेदक, आर्मीवर्म, गेहूं का घुन, और मकड़ी जैसे कीट शामिल हैं। इन कीटों का प्रभावी नियंत्रण हमारी फसल सुरक्षा और उत्पादन वृद्धि के लिए आवश्यक है।

गेहूं की खेती को कई कीटों, रोगों और पर्यावरणीय कारकों से गंभीर चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। स्वस्थ और उन्नत उत्पादन के लिए एकीकृत कीट प्रबंधन (आईपीएम) तकनीकों और रोग–प्रतिरोधी किस्मों का उपयोग एक प्रभावी समाधान है। मानव पोषण में इसकी अत्यधिक प्रासंगिकता और वैश्विक खाद्य सुरक्षा में इसकी प्रमुख भूमिका के कारण, गेहूं कृषि अनुसंधान और नवाचार का एक प्रमुख केंद्र बन गया है। गेहूं प्रजनन, आनुवंशिक सुधार और टिकाऊ कृषि तकनीकों में निरंतर प्रगति से न केवल पैदावार बढ़ाने बल्कि पोषक तत्वों और पर्यावरणीय विपरीत परिस्थितियों के प्रति इसकी सहनशीलता को भी बढ़ाने का लक्ष्य है।

दुनिया के कुल अनाज उत्पादन में लगभग एक–तिहाई योगदान गेहूं का होता है, जो इसे वैश्विक खाद्य आपूर्ति में एक अनिवार्य घटक बनाता है। इसकी उत्पत्ति का अनुमान दक्षिण–पश्चिमी एशिया से किया जाता है, और आर्यों द्वारा भारत में इसका प्रसार तथा प्राचीन चीन, मिस्र और स्विट्जरलैंड में इसके प्रमाण इसके ऐतिहासिक महत्व को दर्शाते हैं। भारत में, गेहूं लोगों के आहार में प्रमुख भूमिका निभाता है, विशेष रूप से प्रोटीन और ऊर्जा का महत्वपूर्ण स्रोत होने के कारण। जनसंख्या की पोषण आवश्यकताओं को पूरा करने की दिशा में इसके उत्पादन को बढ़ाने के प्रयास इस फसल के प्रति निरंतर शोध और सुधार की आवश्यकता को रेखांकित करते हैं।

इस लेख में, हम गेहूं के उत्पादन में आने वाली चुनौतियों, उनके समाधान और नवीनतम वैज्ञानिक प्रगतियों के माध्यम से उत्पादकता बढ़ाने के उपायों पर विस्तार से चर्चा करेंगे, ताकि भविष्य की खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित की जा सके तथा गेहूं की फसल पर प्रमुख कीटों की पहचान, उनकी जीवनावधि, और उन्हें नियंत्रित करने के वैज्ञानिक और व्यावहारिक उपायों की चर्चा करेंगे, ताकि गेहूं उत्पादन को बढ़ावा देने के साथ–साथ इसकी गुणवत्ता को भी सुनिश्चित किया जा सके।

गेहूं की फसल में विभिन्न कीटों द्वारा होने वाला संक्रमण और उनका विवरण

1. गेहूं के तने की आरा मक्खी

- **विवरणः** यह कीट घरेलू मक्खी के आकार का और स्लेटी रंग का होता है। इसके निचले हिस्से पर 4–5 पत्तियाँ होती हैं।
- **लार्वाः** पूरी तरह विकसित लार्वा 10–12 सेमी लंबा होता है और इसका रंग पीला होता है। यह बिना पैरों वाला लार्वा होता है।
- **प्रभावित फसलेंः** गेहूं के अलावा ज्वार, बाजरा, मक्का और अन्य अनाज फसलें भी इससे प्रभावित होती हैं।
- **संक्रमण का प्रभावः** अंडों से निकलने के बाद लार्वा डंठल में छेद कर कलियों में प्रवेश कर जाता है, जिससे फूल का मध्य भाग पीला हो जाता है। छोटे पौधे मर जाते हैं और बड़े पौधे फटने लगते हैं, जिससे उत्पादन में कमी आती है।

2. गुलाबी तना छेदक

- **विवरणः** लार्वा बैंगनी गुलाबी रंग के होते हैं और वयस्क पतंगे भूसे के रंग के सफेद पंखों वाले होते हैं।
- **संक्रमण का प्रभावः** लार्वा केंद्रीय अंकुर को खाकर पौधे में मृत हृदय का निर्माण करता है। इसके कारण पत्तियों में छल्ले जैसे निशान दिखते हैं और गंभीर संक्रमण में तने टूट जाते हैं।

3. गेहूं का घुन

- **विवरणः** वयस्क छोटे होते हैं, भूरे से काले रंग के होते हैं और उनके पैर हल्के पीले होते हैं।
- **संक्रमण का प्रभावः** घुन पत्तियों, हरे तने और स्पाइक्स का रस चूसते हैं, जिससे खेत झुलसे और मुरझाए हुए दिखते हैं। संक्रमण गंभीर होने पर पत्तियाँ सुनहरी हो जाती हैं और सूख जाती हैं।

4. गेहूं का सैनिक कीट (आर्मीवर्म)

- **विवरणः** शुरुआती लार्वा सफेद रंग के होते हैं और बड़े होने पर हरे रंग में बदल जाते हैं। वे दिन में कोकून में छिपे रहते हैं और रात में पत्तियों को खाते हैं।
- **संक्रमण का प्रभावः** ये कीट पत्तियों को पूरी तरह से कंकाल बना देते हैं और अत्यधिक संक्रमण में केवल नसें ही बचती हैं। आर्मीवर्म एक खेत से दूसरे खेत में प्रवास करते हैं।

5. दीमक

- **विवरणः** यह कीट फसल की बुवाई के बाद और कभी–कभी पकने के करीब नुकसान पहुँचाता है।
- **संक्रमण का प्रभावः** दीमक पौधों की जड़ों, तने और यहाँ तक कि सड़ने वाले कोशिकाओं को भी खाती है, जिससे पौधे मर जाते हैं और आसानी से उखाड़े जा सकते हैं।

6. मकड़ी

- **विवरणः** यह बहुत छोटा, चमकदार भूरा से काले रंग का होता है और इसके पैर हल्के पीले रंग के होते हैं।
- **संक्रमण का प्रभावः** मकड़ी रस चूसती है, जिससे पत्तियों पर सफेद धब्बे दिखने लगते हैं। संक्रमण बढ़ने पर पत्तियाँ लाल हो जाती हैं और सूख जाती हैं।

7. गुजिया वीविल

- **विवरणः** यह वीविल मिट्टी के भूरे रंग का होता है और इसके पंख आयताकार होते हैं।
- **संक्रमण का प्रभावः** वयस्क वीविल अंकुरों को काटते हैं और पत्तियों और कोमल टहनियों को खाते हैं। अंकुरण के समय यह नुकसान अधिक होता है।

इन सभी कीटों की पहचान और उनके नियंत्रण के लिए एकीकृत कीट प्रबंधन (आईपीएम) पद्धतियों का उपयोग करके फसल सुरक्षा को बढ़ाया जा सकता है। इनमें जैविक और रासायनिक नियंत्रण, फसल चक्रण और रोग–प्रतिरोधी किस्मों का चयन शामिल है, जो कृषि में सतत उत्पादन सुनिश्चित करते हैं।

गेहूं की फसल में एकीकृत कीट प्रबंधन (आईपीएम) के माध्यम से कीटों का नियंत्रण

1. सांस्कृतिक प्रथाएँ (Cultural Practices)

- **फसल की समय पर बुवाईः** तने का आरा मक्खी और आर्मीवर्म के हमले से बचने के लिए गेहूं की

बुवाई में देरी से बचना चाहिए।

- **उर्वरक प्रबंधनः** नाइट्रोजन उर्वरक की अनुशंसित मात्रा का ही उपयोग करें क्योंकि उच्च नाइट्रोजन स्तर आर्मीवर्म और माहू की अधिक आबादी को आकर्षित करता है।
- **बीज उपचारः** दीमक से सुरक्षा के लिए बुवाई से पहले बीज का उपचार करें। यह न केवल सस्ता और प्रभावी है बल्कि पर्यावरण प्रदूषण को भी कम करता है।
- **अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खादः** दीमक नियंत्रण के लिए गोबर की खाद का उपयोग करें। यह पौधों के विकास को बढ़ावा देती है और दीमक के जोखिम को कम करती है।
- **फसल चक्रः** विभिन्न फसलों को बारी–बारी से उगाना प्रभावी कीट नियंत्रण में सहायक है और मिट्टी की उर्वरता को बनाए रखने में भी मदद करता है।

2. जैविक नियंत्रण (Biological Control)

- **ट्राइक्रोग्रामा एसपीः** गुलाबी बेधक और आर्मीवर्म के नियंत्रण के लिए 50,000/हेक्टेयर की दर से ट्राइक्रोग्रामा एसपी का प्रयोग करें।
- **नीम के बीज की गिरी का अर्कः** जैविक नियंत्रण के तहत 5% नीम के बीज की गिरी के अर्क का छिड़काव करें, जो कीट नियंत्रण में सहायक है।
- **जैविक संरक्षणः** खेत में प्राकृतिक शत्रुओं जैसे कि पक्षी, मित्र कीटों और परजीवी को संरक्षित करना आवश्यक है क्योंकि ये प्राकृतिक रूप से कीटों का नियंत्रण करते हैं।

3. रासायनिक नियंत्रण (Chemical Control)

रासायनिक कीटनाशकों का उपयोगरू जब कीटों की संख्या आर्थिक सीमा स्तर (ETL) से ऊपर हो, तभी रासायनिक कीटनाशकों का प्रयोग करें।

दीमक नियंत्रणः

- बुवाई से पहले 4 मिलीलीटर/किग्रा क्लोरपाइरीफॉस का बीज में उपचार करें।
- दीमक के कालोनी में कच्चे तेल का इमल्शन डालकर उनकी कॉलोनी को नष्ट करें।

आर्मीवर्मः

- क्लोरपायरीफॉस 20 ईसी / 80 मिलीलीटर को 20 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। इससे आर्मीवर्म का प्रभावी नियंत्रण होता है।

गेहूं का घुनः

- फॉर्मोथियोन, ऑक्सीडेमेटोन मिथाइल, या फॉस्फोमिडोन का 250 ग्राम सक्रिय संघटक/हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

गुजिया वीविलः

- कार्बेरिल या मैलाथियान 5ः / 25 किग्रा/हेक्टेयर का छिड़काव करें। यह घुझिया भुनगा का प्रभावी नियंत्रण करता है।

चना फली छेदकः

- प्रति हेक्टेयर 2.0 लीटर क्विनालफॉस 25 ईसी या 3 किग्रा कार्बेरिल 50 डब्ल्यूपी को 500 लीटर पानी में घोलकर छिड़कें।

गुलाबी भेदकः

- 500 लीटर पानी में क्लोरोपाइरीफॉस 20 ईसी / 250 ग्राम सक्रिय संघटक प्रति हेक्टेयर छिड़कें।
- या 150 मिलीलीटर डाइमेथोएट (30म्ब) को 30 लीटर पानी में घोलें और नैप–सैक स्प्रेयर या पावर स्प्रेयर का उपयोग करें। आवश्यकता होने पर 15 दिनों के बाद पुनः छिड़काव करें।

ये सभी उपाय एकीकृत कीट प्रबंधन (आईपीएम) की रणनीतियों में आते हैं, जो न केवल कीटों का नियंत्रण करते हैं, बल्कि गेहूं की पैदावार और गुणवत्ता को बनाए रखने में भी सहायक हैं।

सारांश

पारिस्थितिक और सामाजिक प्रभावों को ध्यान में रखते

हुए, कीट प्रबंधन के लिए एक व्यापक दृष्टिकोण की आवश्यकता है। इसमें सांस्कृतिक, जैविक, रासायनिक, भौतिक और जैव प्रौद्योगिकी नियंत्रण विधियों का सहक्रियात्मक उपयोग शामिल है। यह एकीकृत रणनीति विभिन्न कृषि क्षेत्रों में टिकाऊ और प्रभावी कीट प्रबंधन प्राप्त करने की कुंजी है। वर्तमान में चल रहे अनुसंधान और तकनीकी प्रगति के माध्यम से कीट–प्रतिरोधी गेहूं की किस्मों का विकास हो रहा है, जो पैदावार पर कीटों के प्रभाव को कम करने में सहायक हो सकता है। जैसे–जैसे इन प्रौद्योगिकियों में सुधार होगा, इनका महत्व वैश्विक खाद्य सुरक्षा में बढ़ता जाएगा और गेहूं जैसी महत्वपूर्ण फसलों में लचीलापन बढ़ाकर वैश्विक उत्पादन में भी योगदान देगा। इस प्रकार, एकीकृत कीट प्रबंधन (आईपीएम) का उपयोग न केवल उत्पादन को बढ़ावा देने में सहायक है, बल्कि यह कृषि को टिकाऊ, सुरक्षित और पर्यावरण–संवेदनशील बनाए रखने की दिशा में भी एक महत्वपूर्ण कदम है।

नोटः रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग केवल फसल के नियमित सर्वेक्षण के बाद ही अनुशंसित किया जाना चाहिए। यह सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण है कि कीटों की संख्या आर्थिक हानि के स्तर से ऊपर हो। उपरोक्त सभी जानकारी प्रामाणिक पुस्तकों, शोध पत्रों, सरकारी स्रोतों और विभिन्न विश्वविद्यालयों की आधिकारिक वेबसाइटों से एकत्रित की गई है। इसका उद्देश्य अधिक से अधिक कृषि उत्पादकों तक सटीक और उपयोगी जानकारी पहुँचाना है ताकि वे अपने उत्पादन को प्रभावी ढंग से सुरक्षित रख सकें।

शलगम की उन्नत किस्मों की खेती और बीज उत्पादन

अशोक जायसवाल, नरेश कुमार सिंह, चन्दू सिंह, संजीव कुमार शर्मा, विपिन कुमार एवं विजय सिंह जाटव

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110 012

शलगम (*Brassica rapa*) भारत के अधिकांश हिस्सों में उगाई जाने वाली फसल है। शलगम की उत्पत्ति मध्य और पूर्वी एशिया में हुई है। यह एक जड़ वाली सब्जी है, जिसका उपयोग सलाद या सब्जी के रूप में किया जाता है। शलगम विटामिन और खनिजों का अच्छा स्रोत है, और इसका वनस्पति भाग पशुओं के लिए पौष्टिक आहार के रूप में उपयोग होता है। यह मुख्य रूप से शीत ऋतु की फसल है, शलगम सरसों कुल का पौधा है, जिसे आमतौर पर भारत के समशीतोष्ण, शीतोष्ण और उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में उगाई जाती है। इसे बिहार, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, पंजाब और तमिलनाडु में व्यापक रूप से उगाया जाता है। शलगम के पौधे की जड़ें जहा पर सूर्य की रोशनी के संपर्क में आती हैं, वहा जड़ के बाहरी हिस्से पर गुलाबी या बैगनी रंग का प्रभाव देखने को मिलता है। हालांकि, जड़ के अंदर का भाग पूरी तरह से सफेद रहता है। यह रंग परिवर्तन जड़ की बाहरी परत पर सूर्य के प्रभाव के कारण होता है, जबकि अंदर की जड़ श्वेत रहती है।

जलवायु और मिट्टी

शलगम फसल के लिए ठंडी और नम जलवायु उगाने के लिए सबसे अनुकूल होती है। हालांकि, इसे ऐसे स्थानों पर भी उगाया जा सकता है जहां गर्मी हल्की होती है। जड़ें 10°–15°C तापमान पर सर्वोत्तम स्वाद, बनावट और आकार प्राप्त करती हैं। छोटी दिन की लंबाई और ठंडी जलवायु जड़ों के सही विकास को बढ़ावा देती हैं। लंबी दिन की अवधि और उच्च तापमान जड़ों के पर्याप्त विकास के बिना ही जल्दी फूलने का कारण बनते हैं। गरम मौसम में जड़ें रेशेदार, कठोर और अधिक तीव्र स्वाद वाली हो जाती हैं, जो पकने पर सामान्य हो जाती है। शलगम के लिए मिट्टी गहरी, ढीली और खेत अच्छी तरह से जल निकासी वाली होनी चाहिए। शलगम हल्के अम्लीय मिट्टी में भी अच्छी तरह से उगती है, जिसमें pH 5.5 से 6.8 तक हो।

भूमि की तैयार

भूमि को गहरी जुताई करनी चाहिए और अच्छे बुवाई के लिए जुताई और खरपतवार नियंत्रण के लिए खरिहान (हेरोरोविंग) करनी चाहिए। शलगम के बीज सीधे लाइनों या मेड़ों पर बोए जाते हैं। सामान्यतः शलगम की बुवाई के लिए समतल क्यारी का उपयोग किया जाता है, लेकिन निचले क्षेत्रों या वर्षा ऋतु में बुवाई मेड़ों पर करनी चाहिए। बीजों को 30 सेंटीमीटर की दूरी पर मेड़ों या पंक्तियों में बोते हैं, जबकि पंक्ति के भीतर 5–7 सेंटीमीटर की दूरी रखी जाती है। बीजों को 1.5 सेंटीमीटर गहरा बोया जाता है। बीजों को समान रूप से बोने के लिए रेत या राख के साथ मिलाया जा सकता है।

बीज की बुवाई, समय एवं मात्रा

शलगम के बीज बारीक होते हैं, इसलिए बुआई लाइनों में उचित दूरी पर करना थोड़ा कठिन हो सकता है। लेकिन अंकुरण के बाद, पौधों के बीच की दूरी 12–15 सेंटीमीटर रखनी चाहिए। इसके बाद अतिरिक्त पौधों को निकालकर सही दूरी बनाए रखना आवश्यक है। शलगम की बीज की खेती के लिए द्विवर्षीय शलगम की जातियों में जड़ों का पूर्ण विकास नवंबर के तीसरे सप्ताह तक हो जाना चाहिए। इसके लिए अगस्त के अंत या सितंबर के आरंभ में बीज की बुवाई करना आवश्यक है। एशियाई शलगम की बुवाई जुलाई से सितंबर तक की जाती है, जबकि यूरोपीय प्रकार की शलगम की बुवाई अक्टूबर से दिसंबर तक उत्तरी भारत के समतल क्षेत्रों में की जाती है। पहाड़ी क्षेत्रों में बुवाई का समय सामान्यतः जुलाई से सितंबर तक होता है। यदि बीज से बीज अथवा पौधों को यथा स्थान और उचित दूरी पर रखकर बीज उत्पादन करना हो, तो बीज की पछेती अर्थात्

15 अक्टूबर तक बीज की बुवाई की जा सकती है। एक वर्षीय एशियाई जातियों की बुवाई अगस्त से अक्टूबर तक की जा सकती है। शलगम की खेती के लिए प्रति हेक्टर 4 किलोग्राम बीज की आवश्यकता होती है।

शलगम की प्रमुख प्रजातियाँ

यहां कुछ प्रमुख किस्में हैं जो खेती के लिए अनुशंसित हैं जैसे पूसा चंद्रिमा, पूसा कंचन, पूसा स्वर्णिमा, पूसा स्वेती, पर्पल टॉप व्हाइट ग्लोब, प्रारंभिक मिलान रेड टॉप, गोल्डन बॉल, पंजाब सफेद 4, स्नोबॉल इतियादी।

क्रम संख्या	प्रजाति का नाम	उपयुक्त क्षेत्र	औसत पैदावार कुं/हेक्टर	अवधि	गुणवत्ता लक्षण
01	पर्पल टॉप व्हाइट ग्लोब	उत्तरी भारत के मैदानी व पर्वतीय क्षेत्रों के लिए उपयुक्त	250—300	55—60 दिन	यह एक उच्च पैदावार देने वाली और बड़ी जड़ वाली किस्म है। इसकी जड़ें लगभग गोल होती हैं, ऊपर का हिस्सा बैंगनी और नीचे का हिस्सा क्रीमी रंग का होता है। गूदा सफेद, सख्त, कुरकुरा और हल्का मीठा होता है।यह ठंडी जलवायु में उगाने के लिए उपयुक्त है।
02	पूसा चंद्रिमा	उत्तरी भारत के मैदानी एवं मध्य व उचाई वाले पर्वतीय क्षेत्रों के लिए उपयुक्त	300—400	50—60 दिन	इसकी जड़ें मध्यम से बड़ी, लगभग समतल गोल से गोलाकार, चिकनी, सफेद त्वचा वाली होती हैं जिनमें अच्छे अनाज होते हैं। गूदा मीठा और नर्म होता है। यह जल्दी पकने वाली (दिन) किस्म है, जो प्रति हेक्टेयर 400 क्विंटल तक उपज देती है। यह समतल क्षेत्रों में अक्टूबर से दिसंबर तक बोने के लिए उपयुक्त है।
03	पूसा स्वर्णिमा	उत्तरी भारत के मैदानी एवं मध्य व उचाई वाले पर्वतीय क्षेत्रों के लिए उपयुक्त	355	65—70 दिन	इसकी जड़ें गोलाई में सपाट होती हैं, क्रीमी—पीला छिलका और हल्का ऐम्बर रंग का गूदा होता है। यह पहाड़ी क्षेत्रों में जून से अक्टूबर और समतल क्षेत्रों में अक्टूबर से दिसंबर तक उगाने के लिए उपयुक्त है।
04	पूसा श्वेती	समतल क्षेत्रों में	200—300	40—45 दिन	आकर्षक सफेद जड़ें वाली पूसा स्वेती यह एक बहुत जल्दी पकने वाली किस्म है, जो समतल क्षेत्रों में अक्टूबर में बुवाई के लिए उपयुक्त है।

मिट्टी चढ़ाई

मिट्टी चढ़ाई सामान्यतः बुवाई के 20—25 दिन बाद की जाती है, अच्छी उपज के लिए, जड़ों के विकास की शुरुआत और पुष्पन की अवस्था में जड़ों पर मिट्टी चढ़ाना अनिवार्य है। यदि मिट्टी नहीं चढ़ाई जाती, तो तेज हवा के कारण बीज की फलियों से लदे पौधे गिर सकते हैं और फसल का नुकसान हो सकता है। मिट्टी चढ़ाई और नाइट्रोजन का टॉप ड्रेसिंग जड़ों के गठन के समय एक साथ किया जाता है।

खरपतवार नियंत्रण

फसल को खरपतवार मुक्त रखने और नमी को संचित करने के लिए 2—3 बार होइंग की जाती है। नाइट्रोजन उर्वरकों के शीर्ष—छिड़काव के बाद दूसरे और तीसरे होइंग के दौरान मिट्टी चढ़ाई जाती है, ताकि बेहतर गुणवत्ता वाली जड़ें विकसित हों। आमतौर पर फसल के पकने तक 2—3 बार खरपतवार निकालने का कार्य किया जाता है। हालांकि, फसल के अंतिम चरण में पूरी तरह से विकसित पत्तियां भी खरपतवार को नियंत्रित करती हैं। खरपतवार नियंत्रण के लिए टोक ई —25 (नाइट्रोफेन) को 2 किलोग्राम/हेक्टेयर का प्री—इमर्जेन्स हर्बिसाइड छिड़काव प्रभावी रूप से खरपतवार को नियंत्रित करता है।

उर्वरक

उर्वरकों और खाद की मात्रा उस क्षेत्र की जलवायु, मिट्टी की उर्वरता स्थिति, पी एच स्तर और बनावट पर निर्भर करती है। भारत के विभिन्न कृषि–जलवायु क्षेत्रों के लिए एन. पी. के. की अलग–अलग खुराकें सुझाई गई हैं। हालांकि, भूमि की तैयारी के समय 20–25 टन प्रति हेक्टेयर गोबर खाद की बुनियादी खुराक दी जानी चाहिए। इसके अलावा 70–100 किलोग्राम नाइट्रोजन और 50 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर फॉस्फोरस और पोटाश का उपयोग किया जाता है। फॉस्फोरस, पोटाश की पूरी मात्रा और नाइट्रोजन की आधी मात्रा बुवाई से पहले लगाया जाता है। जाड़े के बाद, जब जड़ों से नई पत्तियाँ निकलने की स्थिति होती है, और पुनः पुष्पन के समय, 25 किलोग्राम नाइट्रोजन उर्वरक प्रति हेक्टेयर की दर से फसल में डालना चाहिए। शलगम में बोरोन, कैल्शियम और मोलिब्डेनम का अवशोषण अधिक होता है। इसलिए, इन सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी को पूरा करने के लिए मिक्नेल्फ एम एस –24 को एक किलोग्राम प्रति हेक्टेयर एक या दो बार छिड़काव किया जाता है, जो शलगम में हॉलो–स्टेम, पिथ निर्माण और ब्राउन हार्ट को नियंत्रित करने में मदद करता है।

सिंचाई

इसे सामान्यतः 8–15 दिन के अंतराल पर सिंचाई की जाती है, जो मौसम की स्थिति पर निर्भर करता है। नमी की कमी का प्रभाव बहुत तेजी से फसल की उपज पर पड़ता है, इसलिए आवश्यक नमी को बनाए रखने के लिए उचित समय पर सिंचाई की जाती है।

बीज उत्पादन

एशियाई प्रकार की शलगम का मैदानों में और यूरोपीय प्रकार की शलगम का पहाड़ियों में बीज उत्पन्न किया जाता है। चयनित जड़ों से स्टेकलिंग तैयार की जाती है, जिसमें जड़ के सिरे को काटकर, ऊपर से एक तिहाई क्राउन को काट दिया जाता है। इन स्टेकलिंग्स को पहाड़ियों में 60 सेमी × 60 सेमी और मैदानों में 45 सेमी × 35 सेमी की दूरी पर लगाया जाता है। चीनी पत्तागोभी, सरसों और अन्य शलगम के साथ परागण से बचने के लिए 1000–1600 मीटर का अलगाव सुनिश्चित किया जाता है। 84 किलोग्राम नाइट्रोजन, 50 किलोग्राम/हेक्टेयर फॉस्फोरस और पोटाश की खुराक देने से शलगम में अच्छा बीज उत्पादन होता है। जब 70 प्रतिशत फलियां हल्की पीली हो जाएं, तो उन्हें तुरंत काट लेना चाहिए ताकि बीज टूटने और पक्षियों द्वारा नुकसान से बचा जा सके। औसतन, शलगम का बीज उत्पादन 5–6 कुंटल प्रति हेक्टेयर होता है।

अवांछनीय पौधों को निकालना और पृथक्करण

शलगम की खेती में अवांछनीय पौधों को निकालने और जातीय शुद्धता बनाए रखने के लिए कुछ महत्वपूर्ण उपाय किए जाते हैं। शरद ऋतु के आगमन से पहले शलगम की जड़ों को निकालकर, पौधों की जातीय शुद्धता का परीक्षण किया जाता है। इसमें अविकसित, विकृत या जातीय गुणों से भिन्नता वाले पौधों को पूरी तरह से निकाल दिया जाता है। जातीय शुद्धता की कसौटी पर कोई समझौता नहीं करना चाहिए, क्योंकि यह फसल की गुणवत्ता और पैदावार को प्रभावित कर सकता है। रोपाई से पहले शलगम की जड़ और पत्तियों को मुट्ठी में पकड़कर, अतिरिक्त भाग को तेज धार वाले चाकू से काट दिया जाता है। इस प्रक्रिया से पौधे की जड़ों का आकार ठीक किया जाता है और यह सुनिश्चित किया जाता है कि केवल स्वस्थ और पूर्ण विकसित पौधे ही खेत में लगाए जाएं। बीज की फसल के लिए तैयार किए गए शलगम को खेत में इस प्रकार दबाते हैं कि केवल पत्तियों का आधार खुला रहे, जिससे पौधों को पर्याप्त वायु और प्रकाश मिल सके। रोपाई के बाद हल्की सिंचाई करना आवश्यक है ताकि पौधों को नमी मिले और वे अच्छे से विकसित हो सकें। शलगम की फसल में पृथक्करण की समस्या विशेष रूप से जटिल होती है, क्योंकि यह आसानी से अन्य फसलों, जैसे कि सरसों या रेप सीड से पर–निषेचन कर सकता है, जो उसके जातीय गुणों को प्रभावित कर सकता है। इस कारण, शलगम को सरसों और रेप के अलावा चायनीज गोभी और रूटाबैगा से भी कम से कम 1000 मीटर की दूरी पर उगाना चाहिए।

तालिका–1 खेत के बीज मानक

फसल का नाम	निरीक्षण की संख्या	प्रथक्करण दूरी		अन्य प्रजातियों के पौधे		अन्य फसलों के पौधे		बीज जनित बीमारियो के पौधे	
		आधार बीज (मी.)	प्रमाणित बीज (मी.)	आधार बीज%	प्रमाणित बीज%	आधार बीज%	प्रमाणित बीज%	आधार बीज%	प्रमाणित बीज%
शलगम जड़ उत्पादन	2	5	5	–	–	–	–	0.10	0.50
शलगम बीज उत्पादन	1	1600	1000	0.10	0.20	–	–	–	–

रोग एवं कीट नियंत्रण

कीटः

- **फ्ली बीटलः** ये पत्तियों में छोटे छेद कर देते हैं और साथ ही शलगम येलो मोसैक वायरस का प्रसार भी करते हैं। । इसका र्प्कोम होने पर कार्बरील (0.1%) का छिड़काव करें।
- **मस्टर्ड सॉ फ्लाईः** यह पत्तियों और फलों को खाकर बीज को नुकसान पहुंचाता है। इसके नियंत्रण के लिए मिट्टी की तैयारी के समय फॉलिडोल एम (2%) या मालाथियॉन डस्ट (5%) @ 20–25 किलोग्राम/हेक्टेयर को मिट्टी में मिलाएं। इसका प्रकोप होने पर मालाथियॉन (0.05%) या डाइक्लोरोवॉस (0.04%) का छिड़काव करें।
- **सूँडी तथा चेपाः** ये कीट शलगम की फसल को अत्यधिक क्षति पहुचाते है इसके नियंत्रण के लिए फसल में 0.3% डाईमिक्रोन दवा का और पुष्प अवस्था में 0.2 प्रतिशत थायोडान या सुमिथियान के छिडकाव से चेपा की रोकथाम की जा सकती है और इमिडाक्लोप्रिड दवा का 0.25 मिली प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए।

रोगः

- **मूल विगलनः** पुनः रोपाई की गई बीज की फसल में विगलन रोग प्रमुख समस्या है। इसके रोकथाम के लिए जड़ो की रोपाई से पहले आधे घंटे तक 0.3% जाइरम अथवा क्यूमान एल, दवाओ के गोल मे डुबो कर रखना चाहिए। जड़ो के ऊपरी भाग (जहां से नई पत्तिया निकलती है) को दवा मे न डुबाये अन्यथा अंकुरण पर विषैली दवाओं का बुरा प्रभाव पड़ेगा।
- **फिल्लौडीः** इसके कारण शलगम का वृत्तक्रम या सम्पूर्ण शाकीय वृद्धि विकृत हो जाती है। सामान्यतः इन पौधों की फलियां बिना बीज के होती हैं। शलगम की पूसा स्वर्णिमा और गोल्डन बाल जातियाँ विशेष रूप से इस रोग की ग्राही होती हैं। वैज्ञानिक परीक्षणों के अनुसार, इस रोग की रोकथाम के लिए शलगम को पुनः रोपाई से पूर्व पानी में टेट्रासाइक्लिन (200 पी.पी.एम.) से उपचारित करना चाहिए। परीक्षणों में पाया गया कि उपरोक्त दवा से उपचारित पौधे पूरी तरह सुरक्षित थे, जबकि बिना उपचार किए गए पौधों में 56.25 प्रतिशत पौधे रोगग्रस्त थे।
- **शलगम येलो मोसैक वायरसः** प्रभावित पौधे ठीक से नहीं बढ़ते, जड़ों का विकास धीमा हो जाता है और गुणवत्ता में गिरावट आती है। यह रोग फली बीटल द्वारा फैलता है। इसके नियंत्रण के लिए प्रभावित पौधों को हटा दें, फ्ली बीटल की जनसंख्या को नियंत्रित करें, और गोभी के पौधों को हटा दें क्योंकि वे मोसैक वायरस के सहायक मेज़बान होते हैं।
- **व्हाइट रस्टः** इस रोग के कारण विशेष रूप से पुष्पवृत्त विकृत हो जाते हैं और फलियों का विकास भी प्रभावित होता है। पौधों के इन अंगों की निचली सतह सफेद पाउडर जैसे पदार्थ से ढक जाती है। कभी–कभी इस रोग के कारण फसल को अत्यधिक हानि होती है। फफूंदी नाशक दवा डाईथेन एम–45

(0.2%) घोल का छिड़काव करके फसल को आसानी से इस रोग से बचाया जा सकता है।

- **ब्राउन हार्ट:** यह बोरोन की कमी के कारण होता है। यह विकार अत्यधिक अम्लीय मिट्टी में प्रकट होता है, प्रभावित जड़ों के अंदर की ओर ग्रे या भूरे रंग का लक्षण दिखाई देता है। जड़ें उपभोग के लिए अनुपयुक्त हो जाती हैं। इसके नियंत्रण के लिए अत्यधिक अम्लीय मिट्टियों में बुवाई से बचें। सूखा अवस्था से बचने के लिए मिट्टी में उचित नमी बनाए रखें। बुवाई से पहले बोरेक्स 10–15 किलोग्राम/हेक्टेयर मिट्टी में मिलाएं। फसल को बोरिक एसिड (0.2%) से 2–3 बार, विशेष रूप से हरियाली अवस्था में छिड़कें।
- **पाउडरी मिल्ड्यू:** प्रभावित पौधों की पत्तियों पर विभिन्न आकार के चूर्णीय धब्बे दिखाई देते हैं। सूखा वातावरण इस रोग के विकास के लिए अनुकूल होता है। लक्षण दिखने से पहले 10–15 दिन के अंतराल पर डिनोकैप (0.05%) या घुलनशील सल्फर (0.2%) का छिड़काव करें।
- **डाउनी मिल्ड्यू:** प्रभावित पत्तियों के नीचे सफेद धब्बे दिखाई देते हैं। पत्तियां पीली होकर अंततः मुरझा जाती हैं। इसके नियंत्रण के लिए प्रभावित पत्तियों को हटा कर नष्ट करें। ज़िनेब 0.2% का छिड़काव करें।

बीज निकालना

द्विवर्षीय जातियों में पुष्पवृन्त की वृद्धि मार्च के दूसरे या तीसरे सप्ताह में आरंभ होती है, और अप्रैल के दूसरे पखवाड़े में पुष्पन (अपने चरम पर पहुँच जाता है। जबकि एक वर्षीय जातियाँ में अधिकतम पुष्पन फरवरी माह में होता है। इस दौरान, यदि मूसलाधार वर्षा होती है, तो फूलों में निषेचन नहीं हो पाता, फूल गिर जाते हैं और बीज की उपज में कमी आ जाती है। 'गोल्डन बाल' जाति पर किए गए परीक्षणों के अनुसार, अप्रैल या मई में मूसलाधार वर्षा के कारण 30 से 38 प्रतिशत फूलों में निषेचन नहीं हुआ, क्योंकि इस जाति में अधिकतर पुष्पण इसी अवधि में होता है। एशियाई जातियों के बीज की फसल अप्रैल में पककर तैयार हो जाती है जबकि द्विवर्षीय जातियों के बीज की फसल मई में पककर तैयार होती है। जब बीज पके होते हैं, तो उनकी फलियाँ सूखकर चिटख जाती हैं और बीज बिखरने लगता है। ऐसे में, बीज की फलियाँ चटकने से बचने के लिए फसल की कटाई 60–70 प्रतिशत फलियाँ पीली होने की अवस्था में करना उचित होता है। कटाई के बाद, बीज को निकालने से पहले उसे अच्छी तरह से सुखाना आवश्यक है। इसके बाद, बीज की सफाई का कार्य फूलगोभी या बन्दगोभी की तरह किया जाता है। इस प्रक्रिया में, बीज को सुखाने और सफाई के लिए विशेष उपकरणों का उपयोग किया जाता है ताकि बीज शुद्ध और उच्च गुणवत्ता वाला बने।

फसल की कटाई

शलगम की उपज किस्मों और मौसम के आधार पर भिन्न होती है, औसतन इसकी उपज 200–400 क्विंटल/हेक्टेयर होती है। कटाई के बाद शलगम की जड़ों को उनके हरे शीर्ष के साथ ठीक से धोकर चिपकी हुई मिट्टी को हटा दिया जाता है। साइड जड़ों को काटकर हटा दिया जाता है। फिर इन्हें बाजार में भेजा जाता है, या तो हरे शीर्ष के साथ या फिर उन्हें क्राउन की सतह के पास काटकर भेजा जाता है। पुराने और रोगग्रस्त पत्तों को हटाने के बाद, पत्तियों को गुच्छों में बांधकर विपणन के लिए तैयार किया जाता है। जड़ों को रंग, आकार और रूप के अनुसार विभिन्न श्रेणियों में छांटा जाता है ताकि वे बाजार में आकर्षक दिखें। इसके बाद इन्हें तुरंत बाजार में भेजा जाता है और बेचा जाता है। जड़ों को ठंडे और नम परिस्थितियों में 2–3 दिनों तक सुरक्षित रखा जा सकता है। हालांकि, इन्हें 0°C तापमान पर 90–95% सापेक्ष आर्द्रता के साथ 8–16 हफ्तों तक स्टोर किया जा सकता है।

भारत में स्मार्ट कृषि के लिए ड्रोन प्रौद्योगिकी का अनुप्रयोग

नरेन्द्र मोहन सिंह, पी. सुप्रिया, उत्कर्ष तिवारी एवं अलका सिंह
कृषि अर्थशास्त्र संभाग, भा.कृ.अ.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110 012

स्मार्ट कृषि, आज कृषि व्यवसाय का सबसे उन्नत पहलू है। स्मार्ट कृषि में ड्रोन प्रौद्योगिकी स्मार्ट सिंचाई, रिमोट सेंसिंग और मैपिंग सहित विभिन्न तकनीकों और प्रथाओं को शामिल किया गया है। ये उपकरण खेती के कार्यों में काफी मदद कर सकते हैं और किसानों के सामने आने वाली चुनौतियों का समाधान कर सकते हैं। कृषि ड्रोन किसानों की सहायता के लिए आए हैं और उन्होंने खेती को आसान और अधिक कुशल बना दिया है।

चित्रः कृषि ड्रोन का प्रभावशाली तरल कीटनाशक छिड़काव प्रदर्शन

स्मार्ट खेती में ड्रोन का उपयोग न केवल खेती को अधिक सटीक बनाता है बल्कि लोगों को स्मार्ट खेती करने में भी मदद करता है। कृषि ड्रोनों में छिड़काव ड्रोन का प्रदर्शन बहुत प्रभावशाली और विश्वसनीय है। किसानों को अधिक कुशल निर्णय लेने और कृषि प्रक्रियाओं को स्वचालित करने में सहायता करने में ड्रोन तकनीक का प्रमुख स्थान है। इससे कम आर्थिक सुविधा वाले क्षेत्रों में किसानों द्वारा सामना की जाने वाली कुछ बाधाओं को दूर करने में मदद मिल सकती है। भारत की अर्थव्यवस्था भी ज्यादातर कृषि उपज पर निर्भर है जिसमें इसके निर्यात का एक बड़ा हिस्सा भी शामिल है। लगभग 56% आबादी अपनी आजीविका के लिए कृषि क्षेत्र पर निर्भर है। भारत में लगभग 44% खेती योग्य भूमि की देखभाल छोटे और सीमांत किसानों द्वारा की जाती है, जो कुल खाद्यान्न उत्पादन में लगभग 60% का योगदान करते हैं। यह देश के आर्थिक विकास में रणनीतिक भूमिका निभाते हुए लगातार महत्वपूर्ण आर्थिक रूप में मदद करते है। जबकि प्रतिकूल मौसम की स्थिति और अनियंत्रित कीट समस्याओं के कारण फसल की विफलता इस परिदृश्य में हानि पहुचाने में प्रमुख योगदानकर्ता रही है। इसके बावजूद भारतीय किसान अब भी इसी पर निर्भर हैं।

1. स्मार्ट प्रौद्योगिकियों के बढ़ते उपयोगः सिंचाई के लिए मानसून की बारिश और अन्य कृषि पद्धतियों के लिए पुराने तरीकों का उपयोग के परिणामस्वरूप व किसानों के अथक प्रयासों के बावजूद, कृषि उपज की गुणवत्ता और मात्रा से कभी–कभी समझौता किया जाता है। बढ़ती मानव आबादी की खाद्य मांगों को पूरा करने के लिए, कृषि पद्धतियों ने फसल की पैदावार बढ़ाने और परिचालन व्यय को कम करने के लिए प्रौद्योगिकियों की बढ़ती संख्या को एकीकृत किया है। परिणामस्वरूप, कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) और स्वचालित मशीनरी जैसी स्मार्ट प्रौद्योगिकियों के बढ़ते उपयोग को भारतीय खेती में शामिल किया गया है। खाद्य उत्पादन के विभिन्न चरण, फसल रोपण और पशुधन की रखवाली से लेकर खाद्य प्रसंस्करण और परिवहन तक वर्तमान समय में, जब कृषि क्षेत्र श्रमिकों की कमी और गिरती आय सहित कई चुनौतियों का सामना कर रहा है, तो ड्रोन के रूप में लोकप्रिय मानव रहित हवाई वाहन (यूएवी) का उपयोग किसानों की मदद के लिए आया है, ताकि उन्हें छिड़काव सहित विभिन्न गतिविधियों में सहायता मिल सके। कीटनाशकों और पोषक तत्वों का प्रबंधन। ड्रोन कई उद्योगों में आवश्यक कार्यभार और समय को कम करके दक्षता में सुधार करता है। कृषि प्रक्रियाओं

के प्रगतिशील स्वचालन ने कृषि श्रम की उत्पादकता में काफी सुधार किया है, जिससे श्रमिकों का बड़ा हिस्सा अन्य उत्पादक औद्योगिक क्षेत्रों में स्थानांतरित हो गया है। प्रौद्योगिकी की प्रगति के साथ, ड्रोन पर अनुसंधान अधिक से अधिक गहन हो गया है, और व्यावहारिक अनुप्रयोग क्षेत्र अधिक व्यापक हो गए हैं। इन स्मार्ट प्रौद्योगिकियों के अद्वितीय फायदे खाद्य उत्पादन के विभिन्न चरणों में उनके समावेश में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वर्तमान समय में ड्रोन तकनीक भी धीरे–धीरे परिपक्व हो गई है। कृषि में ड्रोन का उपयोग पहले से ही पूरे एशिया और दुनिया के अन्य हिस्सों में व्यापक है। उनका उपयोग सीमित और वाणिज्यिक के लिए विशिष्ट है।

2. कृषि और वानिकी में संचालनः खरपतवार, कीट–पतंगों और रोग प्रबंधन के लिए छिड़काव, उर्वरकों का प्रसार और साथ ही नए जंगल लगाना अब ड्रोन के विविध उपयोग

चित्रः कृषि ड्रोन का नैनो–यूरिया पर्ण अनुप्रयोग पर प्रभावशाली उर्वरक छिड़काव प्रदर्शन

हैं। कृषि में ड्रोन प्रौद्योगिकी का संभावित अनुप्रयोग फसल छिड़कावः प्रौद्योगिकी को पहली बार 1980 के दशक में जापान में लागू किया गया था। जब छिड़काव उपकरण और कीटनाशक टैंकों से लैस मानव रहित हेलीकॉप्टरों का उपयोग फसल के खेतों में छिड़काव के लिए किया जाता था। विशिष्ट आधुनिक छिड़काव ड्रोन में 10 लीटर से अधिक तरल कीटनाशक की टैंक क्षमता होती है और प्रति मिनट एक लीटर से अधिक की डिस्चार्ज दर होती है, जिससे वे 10 मिनट में एक हेक्टेयर को कवर कर सकते हैं। ड्रोन उपयुक्त आकार के टैंक ले जा सकते हैं, जिन्हें अपेक्षाकृत कम समय में बड़े क्षेत्रों में फसलों पर छिड़काव के लिए उर्वरकों, शाकनाशी या कीटनाशकों से भरा जा सकता है। विशिष्ट शेड्यूल और मार्गों पर स्वायत्त और पूर्व–क्रमादेशित चलने के कारण फसल छिड़काव अधिक सुरक्षित और लागत प्रभावी है। अलग–अलग स्थलाकृति में समान और इष्टतम छिड़काव परिणाम प्राप्त करने के लिए ड्रोन को अल्ट्रासोनिक इकोइंग, टाइम–ऑफ–फ्लाइट (टीओएफ) लेजर और ग्लोबल नेविगेशन सैटेलाइट सिस्टम (जीएनएसएस) सिग्नल का उपयोग करके अपनी ऊंचाई और गति को स्वयं समायोजित करने के लिए भी प्रोग्राम किया जाता है। स्मार्ट फार्म कृषि छिड़काव के लिए ड्रोन का उपयोग कर रहे हैं, जो उर्वरकों और कीटनाशकों जैसे हानिकारक रसायनों के साथ मानव संपर्क को कम करता है। जब तनाव का पता लगाने वाली तकनीक के साथ स्वचालित स्पॉट उपचार की बात आती है तो ड्रोन भी अद्वितीय होते हैं, जो स्वस्थ हिस्सों को बरकरार रखते हुए प्रभावित क्षेत्रों का इलाज करने के लिए सेंसर और कैमरों का उपयोग करते हैं। ड्रोन पारंपरिक मशीनरी की तुलना में छिड़काव क्षमता को पांच गुना तक तेजी से बढ़ाते हैं। फसल की निगरानी न केवल किसानों के लिए बल्कि कृषि कार्यों से जुड़े विभिन्न अन्य हितधारकों के लिए भी सबसे बड़ा सिरदर्द है। अप्रत्याशित मौसम पैटर्न के बढ़ने से यह चुनौती और भी बदतर हो गई है, जिससे फसल के नुकसान का जोखिम और रखरखाव की लागत बढ़ गई है। फसल विकास से संबंधित पूर्व–निर्धारित पैमानों पर मल्टीस्पेक्ट्रल भू–स्थानिक और अस्थायी डेटासेट इकट्ठा करके निगरानी मार्ग निर्धारित करने के लिए ड्रोन का उपयोग किया जा सकता है। डेटा विश्लेषण मैन्युअल फ़ील्ड स्काउटिंग द्वारा दिखाई देने से बहुत पहले फसल स्वास्थ्य पर अंतर्दृष्टि प्राप्त करने में ड्रोन का उपयोग मदद करता है।

3. ड्रोन द्वारा फसल निगरानीः बड़े खेतों में फसलों की समग्र स्थिति का अनुमान लगाना लगभग असंभव है। ड्रोन का उपयोग करके कृषि मानचित्रण से किसानों को अपने पौधों की स्थिति के बारे में अपडेट रहने और खेतों के उन क्षेत्रों की पहचान करने में मदद मिल सकती है जिन पर ध्यान देने की आवश्यकता है। इन्फ्रारेड कैमरों से लैस ड्रोन खेतों का निरीक्षण कर सकते हैं और उनकी प्रकाश अवशोषण दर के आधार पर फसलों की स्थिति का अनुमान लगा सकते हैं। सटीक वास्तविक समय की जानकारी के साथ, किसान खेत के किसी भी स्थान पर फसलों के स्वास्थ्य में सुधार के लिए आवश्यक उपाय कर सकते

हैं। ड्रोन की यह फसल निगरानी और स्वास्थ्य मूल्यांकन सुविधा किसानों के बीमा दावों के क्रॉस–सत्यापन के लिए कृषि बीमा उपकरणों को बढ़ाने के लिए उनका उपयोग करने का आधार भी बनाती है। हालाँकि, अपनाए गए बीमा मॉडल की तुलना में वित्तीय निहितार्थ और व्यावहारिक संभावनाएं भविष्य के संभावित उपयोग का फैसला करेंगी। भारत सरकार की फसल बीमा योजना, प्रधान मंत्री फसल बीमा योजना (पीएमएफबीवाई) में, फसल उपज का अनुमान सबसे कम निर्दिष्ट किया गया है। बीमा दावों पर निर्णय लेने के लिए प्रशासनिक स्तर को सबसे महत्वपूर्ण संकेतक माना जाता है। फसल की उपज के आकलन के लिए, देश के विभिन्न हिस्सों में किए गए बड़ी संख्या में पायलट अध्ययनों का मूल्यांकन और सत्यापन करने के लिए, फसल काटने के प्रयोगों (सीसीई) की अच्छी तरह से स्थापित पद्धति अब तक उपयोग में रही है। वित्तीय सहायता केंद्रीय कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय ने भारत में सटीक खेती को बढ़ावा देने के लिए हितधारकों के लिए ड्रोन तकनीक को किफायती बनाने के लिए दिशानिर्देश जारी किए हैं। आईसीएआर, नई दिल्ली ने 2022–23 के दौरान ड्रोन की खरीद और प्रदर्शन के लिए धन के आवंटन के लिए विभिन्न राज्य कृषि विश्वविद्यालयों (एसएयू), कृषि विज्ञान केंद्रों (केवीके) और आईसीएआर संस्थानों को मंजूरी दी थी। ड्रोन एप्लिकेशन के माध्यम से कृषि सेवाएं प्रदान करने के लिए, ड्रोन और उसके अनुलग्नकों की मूल लागत का 40% या 4 लाख, जो भी कम हो, वित्तीय सहायता मौजूदा और ड्रोन खरीद के लिए भी प्रदान की जाती है।

4. किसानों व किसान उत्पादक संगठनों (एफपीओ) और ग्रामीण उद्यमियों की सहकारी समिति के तहत नए कस्टम हायरिंग सेंटर (सीएचसी): सीएचसी स्थापित करने वाले कृषि स्नातक ड्रोन की लागत का 50% अधिकतम 5.00 लाख रुपये तक वित्तीय सहायता प्राप्त करने के पात्र हैं। ड्रोन प्रदर्शन के लिए पहले से चिन्हित संस्थानों के अलावा, राज्य और केंद्र सरकार के अन्य कृषि संस्थानों और कृषि गतिविधियों में लगे केंद्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों को भी किसानों के ड्रोन प्रदर्शन के लिए वित्तीय सहायता के लिए पात्रता सूची में लाया गया है। अटारी पुणे में कृषि–ड्रोन परियोजना अटारी पुणे ज़ोन–VIII में महाराष्ट्र, गुजरात और गोवा राज्य शामिल हैं जिनमें 82 कृषि विज्ञान केंद्र शामिल हैं; जिनमें से 50, 30 और 2 संबंधित राज्यों में मौजूद हैं। कृषि मंत्रालय ने कृषि यंत्रीकरण पर उप मिशन के कृषि ड्रोन प्रोजेक्ट के तहत वर्ष 2022–23 में 40 ड्रोन, राज्य कृषि विश्वविद्यालयों के लिए 7, आई सी ए आर संस्थानों के लिए 23 और कृषि विज्ञान केंद्रों के लिए 10 ड्रोन स्वीकृत किए हैं। अटारी पुणे में ड्रोन पायलट प्रशिक्षण नागरिक उड्डयन महानिदेशालय (डीजीसीए) ने देश में 63 रिमोट पायलट प्रशिक्षण संगठनों (आरपीटीओ) को अधिकृत किया है। देश भर में ड्रोन पायलट प्रशिक्षण और कौशल प्रदान करने के लिए आरपीटीओ केंद्रों को डीजीसीए द्वारा मंजूरी दे दी गई है। अटारी पुणे ने 3 आरपीटीओ में कार्यान्वयन केंद्रों के लिए पायलट प्रशिक्षण का आयोजन किया– एमपीकेवी, राहुरी, महाराष्ट्र; राष्ट्रीय रक्षा विश्वविद्यालय, गांधीनगर, गुजरात और सेंटर फॉर एयरोस्पेस, चेन्नई, तमिलनाडु। आरपीटीओ एमपीकेवी, राहुरी, महाराष्ट्र में, 3 कृषि विश्वविद्यालयों, 9 आईसीएआर संस्थानों और 6 केवीके से 35 दूरस्थ पायलटों को प्रशिक्षित किया गया। आरपीटीओ आरआरयू, गांधीनगर, गुजरात में, 22 ड्रोन पायलटों को 4 कृषि विश्वविद्यालयों, 1 आईसीएआर संस्थान को प्रशिक्षित किया गया था।

5. ड्रोन प्रदर्शन के दौरान आने वाली बाधाएं/समस्याएं: हवा या बरसात की स्थिति में, पारंपरिक विमानों के विपरीत, ड्रोन उड़ाना आसान नहीं है। ड्रोन मौसम पर निर्भर होते हैं। स्वायत्त मोड में ड्रोन का संचालन करते समय खेत के चार कोनों की पहचान करने में अधिकतम समय बर्बाद होता है। ड्रोन को संचालन के लिए दो लोगों की आवश्यकता होती है। नैनो–यूरिया पर्ण अनुप्रयोग पर ड्रोन प्रदर्शन, किसानों को जागरूक करना और गन्ने में उत्पादकता बढ़ाना, पीजीआर के छिड़काव पर प्रदर्शन फलों की फसल, चने के छिड़काव पर प्रदर्शन एवं प्याज पर कीटनाशकों के छिड़काव पर प्रदर्शन में दो लोग चाहिए।

इसलिए ड्रोन प्रदर्शनों की योजना और कार्यान्वयन के लिए एक समर्पित टीम उपलब्ध होने की आवश्यकता है। ड्रोन तकनीक में विभिन्न प्रकार के कृषि कार्यों को कुशलतापूर्वक पूरा करने की काफी संभावनाएं हैं। आधुनिक युवा इसमें शामिल कड़ी मेहनत और कठिन परिश्रम के कारण खेती की ओर आकर्षित नहीं होते हैं। ड्रोन के निहितार्थ युवाओं को कृषि के प्रति आकर्षित

और प्रोत्साहित कर सकते हैं, क्योंकि ड्रोन किसानों को अपने खेतों की बेहतर समझ रखने में सक्षम बनाते हैं। ड्रोन की मदद से किसान कम रसायनों का उपयोग करते हुए अधिक अन्न का उत्पादन कर सकते हैं। ड्रोन का उपयोग करने वाले लगभग सभी किसानों ने किसी न किसी रूप में लाभ प्राप्त किया है। वे अपनी भूमि का अधिक कुशल उपयोग कर सकते हैं, पूरी फसल को नष्ट करने से पहले कीटों को नष्ट कर सकते हैं, समस्या क्षेत्रों में विकास में सुधार के लिए मिट्टी की गुणवत्ता को समायोजित कर सकते हैं, गर्मी के तनाव से ग्रस्त पौधों के लिए सिंचाई में सुधार कर सकते हैं और नियंत्रण से बाहर होने से पहले आग पर नज़र रख सकते हैं। इसलिए, किसानों को अपने खेतों और संसाधनों को बेहतर और टिकाऊ तरीके से प्रबंधित करने में मदद करके ड्रोन भविष्य में कृषि का एक प्रमुख हिस्सा बन सकते हैं। लेकिन इसे लोकप्रिय और किसान–अनुकूल बनाने के लिए उच्च प्रारंभिक लागत और नीतिगत सुधार व कठिन बाधाएं हैं, जिन पर काबू पाना जरूरी है। सीमाओं के बावजूद, इन उपकरणों और प्रौद्योगिकी के बारे में जानकारी प्रदान करके कृषि में उनके उपयोग का तेजी से विस्तार हो रहा है।

स्रोतः

1. आई.सी.ए.आर.–कृषि प्रौद्योगिकी अनुप्रयोग अनुसंधान संस्थान, पुणे, महाराष्ट्र–411015
2. वार्षिक रिपोर्ट 2023, कृषि प्रौद्योगिकी अनुप्रयोग अनुसंधान संस्थान, पुणे आई.सी.ए.आर., महाराष्ट्र–411015

गुलाब की नई किस्म 'पूसा अल्पना' से व्यावसायिक खेती

एम के सिंह, नमिता, अमर सिंह धामा एवं हरेंदर यादव
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110 012

फूलों की दुनिया में गुलाब का सर्वोत्तम स्थान है। गुलाब एक सर्वाधिक लोकाप्रिय पुष्प है। बाइबल और प्राचीन संस्कृत में वर्णन के अनुसार गुलाब का इस्तेमाल रोम और भारत में शौकीन मनुष्यों द्वारा किया जाता था। आयुर्वेद में भी गुलाब की विशेषता का वर्णन किया गया है। गुलाब को फूलों की रानी कहा गया है। यह दक्षिणी एशिया, चीन–जापान, उत्तरी अमेरिका, उत्तरी–पूर्वी अफ्रीका और भारत के मैदानी व पर्वतीय क्षेत्रों में उगाया जाता है। गुलाब कट–फ्लावर, लूज फ्लावर, गुलकंद, सुगंध तेल इत्यादि उद्देश्यों के लिए उगाया जाता है। सभी व्यावसायिक तौर पर महत्वपूर्ण पुष्पों में गुलाब दुनिया में पहले स्थान पर है। हमारे देश में गुलाब के फूलों को रंगों के आधार पर विभिन्न उद्देश्य के लिए उपयोग में लाया जाता है जैसे गुलाब का लाल पुष्प अपने प्रिय मित्र, सफेद फूल सादगी, गुलाबी फूल खुशी, पीला फूल ईशा के अवसर पर तथा सफेद एवं लाल फूल सदैव स्मरण हेतु उपयोग में लाया जाता है। सुगन्धित वर्ग के गुलाब की प्रजातियों का उपयोग लूज फ्लावर, तेल, कंक्रीट, गुलाब जल इत्यादि के लिए किया जाता है।

गुलाब की नई किस्म 'पूसा अल्पना'

गुलाब की किस्म रोज शरबत

गुलाब की नई किस्म 'पूसा अल्पना' की विशेषताएं

गुलाब की किस्म 'पूसा अल्पना' फ्लोरीबन्डा टाईप गुलाब के वर्ग में आता है। यह बहुत ही खुशबूदार किस्म है। इसके पुष्प का इस्तेमाल लूज फ्लावर के लिए बहुत ही उपयुक्त है। 'पूसा अल्पना' के पौध सामग्री को बड़े स्तर पर कलम विधि द्वारा प्रबंधन किया जाता है। इस किस्म में मुख्यतः शीतकालीन एवं वर्षा के मौसम में अधिककांश मात्रा में पुष्पन होता है। इसमें बहुत ही काम रोगव्याधि एवं कीड़े मकोड़ों का प्रकोप होता है।

जलवायु

गुलाब बहुवर्षीय वर्ग का पौधा है। इसके पौधों की अच्छी बढ़वार के लिए आवश्यकतानुसार जलवायु का होना अति आवश्यक है। पौध रोपण के समय वातावरण का ठण्डा होना जरूरी है। जलवायु के अन्तर्गत प्रकाश, तापमान, आपेक्षिक आर्द्रता एवं कार्बन डाईऑक्साइड की सान्द्रता पौधे के वृद्धि एवं विकास के लिए बहुत ही आवश्यक है।

प्रकाश

प्रकाश का गुलाब के पौधों के वृद्धि एवं विकास पर बहुत ही प्रभाव पड़ता है। गुलाब को न ही कम एवं अधिक प्रकाश अवधि की आवश्यकता है बल्कि अधिक प्रकाश की तीब्रता होनी चाहिए। यह पाया गया है कि प्रकाश की तीब्रता तथा तापमान कम हो तो गुलाब में पुष्प नहीं आता है।

तापमान

गुलाब के पौधों के वृद्धि एवं पुष्पन पर तापमान का बहुत प्रभाव देखा गया है। इसके पौधों की अच्छी बढ़वार के लिए दिन का तापमान 25 से 30 डिग्री सेंटीग्रेड होना चाहिए तथा जब बादल में छाया हो उस समय 18 से 20 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान होना चाहिए।

आर्द्रता

गुलाब का पुष्प उत्पादन करने के लिए ऐसे क्षेत्र का चुनाव करना चाहिए जहां पर अधिक वर्षा न होती हो क्योंकि वर्षा अधिक होने पर वातावरण में आर्द्रता बढ़ जाने के कारण कवक से होने वाले बीमारियों का प्रकोप बढ़ जाता है। वातावरण में आर्द्रता कम एवं अधिक होना गुलाब के लिए हानिकारक पाया गया है। आर्द्रता कम होने पर गुलाब के पौधों पर लाल मकड़ी का प्रकोप बढ़ जाता है। आर्द्रता को बढ़ाने के लिए फुहार सिंचाई विधि का प्रयोग किया जाता है।

कार्बन डाईऑक्साइड

वातावरण में कार्बन डाईऑक्साइड का होना पौधों के बढ़वार के लिए बहुत जरूरी है। कार्बन डाईऑक्साइड की सांद्रता ठीक होने पर पौधों में प्रकाश संश्लेषण की क्रिया बढ़ जाती है एवं पौधे अधिक मात्रा में भोजन बनाते हैं। कार्बन डाईऑक्साइड की सांद्रता के साथ प्रकाश का होना पौधों की बढ़वार के लिए बहुत ही जरूरी है।

मिट्टी तथा क्यारी की तैयारी

गुलाब की खेती विभिन्न प्रकार की मिट्टी में की जा सकती है। बलुई दोमट मिट्टी जिसमें कार्बनिक पदार्थ की मात्रा भरपूर हो, गुलाब की खेती के लिए सर्वोत्तम पायी गयी है। मिट्टी का पीएच मान 5.5 से 6.5 के बीच में होना चाहिए। चिकनी मिट्टी में गुलाब की खेती नहीं करनी चाहिए। मिट्टी की अच्छी तैयारी गुलाब के पौधों को लम्बी अवधि तक गुणवत्ता युक्त पुष्प उत्पादन के लिए बहुत ही आवश्यक है। खेत की तैयारी करते समय पहली जुताई कम से कम 40 से 50 सेंमी. गहरी करनी चाहिए ताकि मिट्टी की कड़ी परत टूट जाए जिससे गुलाब की जड़ों की अच्छी वृद्धि एवं विकास हो सके। मिट्टी में उपलब्ध पोषक तत्व की मात्रा को जानने के लिए मिट्टी परीक्षण करा लेना चाहिए। मिट्टी परीक्षण के उपरान्त पौषक तत्व की उपलब्ध मात्रा के अनुसार अतिरिक्त, गोबर की सड़ी खाद नत्रजन, फॉस्फोरस, पोटाश, एवं सूक्ष्म पोषक तत्व हेतु उर्वरकों को मिट्टी में मिलाना चाहिए। मिट्टी में लवण की अधिक मात्रा होने पर शुरू में कम से कम दो बार खेत में पानी भरकर कुछ समय बाद बाहर निकालना चाहिए तथा मिट्टी को सुखने के लिए छोड़ देना चाहिए। ऐसा करने से मिट्टी में लवण की मात्रा कम हो जाती है। गुलाब की गुणवत्ता पुष्प उत्पादन के लिए 4 से 5 मीटर चौड़ी एवं सुविधानुसार लम्बी क्यारियां बनानी चाहिए। पौध रोपण से पहले क्यारियों को नम कर देना चाहिए।

प्रवर्धन

कलम विधि द्वारा प्रवर्धन

यह सबसे सरल एवं कम लागत वाली विधि है। इस विधि द्वारा पुष्प उत्पादक स्वयं पौधे बना सकते हैं। एक वर्ष पुरानी स्वस्थ्य कलमों का इस्तेमाल इस विधि में किया जाता है। कलम की लम्बाई औसत 9 इंच एवं मोटाई पेंसिल जैसी रखी जाती है। कलमों में अच्छी जड़ के फुटाव के लिए एन ए ए., आई बी ए, आई ए ए इत्यादि जैसे

जड़ों को बढ़ावा देने वाले वृद्धि नियामकों का इस्तेमाल किया जाता है। इन वृद्धि नियामकों से कलमों के निचले भाग को पाउडर या घोल के रूप में उपचारित किया जाता है। कलम लगाने योग्य तैयार होने के बाद उसे मिट्टी या बालू, वर्मीकुलाईट, परलाइट इत्यादि मीडिया में लगा दिया जाता है। कलमों में अच्छी तरह जड़ें एवं तना विकसित होने के बाद अन्य स्थान पर रोपित कर देना चाहिए। कलम द्वारा तैयार पौधे पुष्प उत्पादन में कम समय लेते हैं।

कलम विधि द्वारा किस्म पूसा अल्पना का प्रवर्धन

कलम विधि द्वारा गुलाब का प्रवर्धन

पौध रोपण

गुलाब का पौध रोपण करते समय दिन का तापमान 25 से 27 डिग्री सेंटीग्रेड तथा रात का तापमान 12 से 19 डिग्री सेंटीग्रेड अच्छा पाया गया है। मैदानी क्षेत्र में गुलाब के रोपण का समय अक्तूबर से नवम्बर तथा फरवरी से मार्च सबसे अच्छा पाया गया है। पहाड़ी क्षेत्र में गुलाब के रोपण का समय सितम्बर से अक्तूबर तथा मार्च अच्छा पाया गया है। पौध रोपण के एक दिन पहले क्यारियों को हल्का नम कर देते हैं। क्यारी में मिट्टी को फावडे से 40 से 50 सेंमी के फासला पर 25 से 30 सेंमी. चौड़ी एवं गहरी खुदाई करके मिट्टी को रास्ते पर कर देते हैं। उसके उपरान्त पंक्तियों में पौध रोपण कर देते हैं। पौधे लगाने के साथ–साथ पौधों को मिट्टी से दबाते जाते हैं। जब एक क्यारी का पूर्ण रोपण हो जाए तथा रास्ते पर पड़ी मिट्टी क्यारी के साथ लग जाए उसके उपरान्त तुरन्त पाइप से क्यारी में अच्छी तरह पानी भर देते हैं। पानी देने के उपरान्त क्यारियों में जहां भी मिट्टी दबी लगे वहीं अच्छी तरह मिट्टी डालकर दबा देते हैं तथा फिर वहां पर सिंचाई कर देते हैं। ऐसा करने से गुलाब के पौध की मृत्यु कम होती है।

सिचाई

बरसात एवं जाड़ा के मौसम में कम सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। पानी की मात्रा पौधों के वृद्धि एवं विकास तथा सूर्य की रोशनी की तीव्रता पर निर्भर करता है। जब पौधे स्वस्थ हों तथा धूप तेज हो रही हो उस समय गुलाब के पौधों को अधिक पानी की आवश्यकता पड़ती है। गुलाब के पौधों को सिंचाई सुबह 9 बजे से सायं 3 बजे के बीच में कर देनी चाहिए। रात के समय सिंचाई नहीं करनी चाहिए।

कटाई–छंटाई

गुलाब की खेती करने के लिए इसके पौधों की कटाई–छंटाई बहुत ही महत्वपूर्ण है। गुलाब का पौध रोपण के पश्चात् पौधों से नयी शाखाएं निकली हैं। जब पौधों पर अधिक शाखाएं विकसित हो जाती हैं उसके उपरान्त प्रत्येक पौधा से 4 से 6 स्वस्थ्य शाखा को छोड़कर काट देते हैं। इस प्रकार नये पौधों में कटाई–छंटाई की जाती है। गुलाब में कटाई–छंटाई का समय मैदानी क्षेत्र में सितम्बर से अक्तूबर तथा पहाड़ी क्षेत्र में मार्च के महीने में की जाती है। कटाई–छंटाई के दौरान सूखी शाखाओं को काट देना चाहिए। गुलाब की पतली शाखाओं को पुष्प उत्पादन के लिए ट्रेन नहीं करना चाहिए। गुलाब के पौधों को काटने–छाटने के तुरन्त बाद फफूंदीनाशक कैप्टान 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

पोषण

गुलाब की अच्छी गुणवत्तायुक्त पुष्प एवं अधिक उपज के लिए अधिक मात्रा में पोषण की आवश्यकता पड़ती है। पोषण की बिल्कुल सही मात्रा के लिए समय–समय पर मिट्टी का परीक्षण होना चाहिए। इसके पौधों की अच्छी वृद्धि एवं विकास के लिए नाइट्रोजन का बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान है। नत्रजन का पौधों में कमी होने पर इसकी पत्तियां हल्की हरी रंग की हो जाती हैं। गुलाब के पौधे नत्रजन को नाइट्रेट के रूप में लेते हैं। फास्फोरस पौधों की जड़ों के वृद्धि एवं विकास के लिए बहुत ही जरूरी पोषक तत्व है। फॉसफोरस की मात्रा गुलाब के पौधों के लिए सुपर फॉस्फेट या कैल्शियम फॉस्फेट के रूप में दिया जा सकता है। पोटाश गुलाब के पुष्प की गुणवत्ता को बढ़ाने और कवक से होने वाले रोग पाउडरी मील्डॅयू के प्रति सहन शक्ति को बढ़ाने के लिए बहुत ही उपयोगी है। मैग्नीशियम, मैगनीज, बोरान, सल्फर जैसे महत्वपूर्ण पोषक तत्व गुलाब के पौधों के लिए अति आवश्यक है। गुलाब के पौधों की वृद्धि एवं विकास तथा गुणवत्ता युक्त अधिक मात्रा में पुष्प उत्पादन के लिए पोषक तत्वों को टपक सिंचाई के पानी के साथ प्रतिदिन देना चाहिए। पुष्प उत्पादन के दौरान पूर्ण पोषक तत्वों की मात्रा तथा जब पौधा सुप्ताअवस्था या पुष्प उत्पादन में न हो उस दौरान पूर्ण पोषक तत्वों के मात्रा की आधी मात्रा देना चाहिए। साधारण तौर पर नत्रजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश प्रत्येक को 200 पीपीएम का घोल गुलाब के पौधों के लिए ज्यादा लाभदायक पाया गया है। मिट्टी की पीएच मान बढ़ने पर गुलाब के क्यारियों में वर्मीकम्पोस्ट का प्रयोग किया जा सकता है।

निराई–गुड़ाई एवं खरपतवार नियंत्रण

महीने में एक बार क्यारियों की ऊपरी सतह की मिट्टी की हल्की निराई–गुड़ाई करनी चाहिए। मिट्टी की गुड़ाई करने से मिट्टी भुरभुरी बनी रहती है तथा मिट्टी पानी भण्डारण की क्षमता भी बढ़ जाती है। गुड़ाई करते समय यह सावधानी रखनी चाहिए कि गुलाब की पतली जड़ें न टूटें इसके लिए हल्की गुड़ाई करनी चाहिए। निराई–गुड़ाई से खरपतवार नियन्त्रित होते हैं।

कीट पतंग और रोग

एफिड

माहू/एफिड की विभिन्न प्रजातियों का प्रकोप गुलाब के पौधों पर देखा गया। आमतौर पर हरे रंग वाला एफिड गुलाब के पौधों को प्रभावित करता है। कभी–कभी काले रंग के एफिड का भी प्रकोप देखा गया है। यह एक रस चुसने वाला कीड़ा है जो पत्तियों, तना तथा पुष्प कलियों का रस चुसते हैं। एफिड के द्वारा कई विषाणु रोग भी गुलाब के एक पौधे से दूसरे पौध में फैलते हैं। इनकी रोकथाम के लिए मैलाथियान 1.5–2.0 मिली लीटर प्रतिलीटर पानी में घोलकर गुलाब के पौधों पर छिडकाव करना चाहिए। इसके अलावा मैलाथियान 1.5–2.0 मिली लीटर या रोगर 1.5 मिली लीटर प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करने से एफिड की रोकथाम की जाती है।

लाल मकड़ी

लाल मकड़ी गुलाब के पौधों में शुरू में पत्तियों के नीचले भाग पर दिखती है तथा बाद में सम्पूर्ण पौधों पर फैल जाती है। लाल मकड़ी भी पत्तियों से रस चूसने का काम करती है जिसके कारण लाल मकड़ी से प्रभावित पौधों की पतियां हरे से सफेद रंग में होने लगती हैं। लाल मकड़ी का गुलाब पर प्रकोप गर्मी के मौसम में अधिक तापक्रम होने तथा वातावरण में कम आर्द्रता होने के कारण होती है। इसकी रोकथाम के लिए पॉलीहाउस में फुहार सिंचाई विधि से वातावरण में आर्द्रता बढ़ा देना चाहिए। ऐसा करने से लाल मकड़ी का प्रकोप कम हो जाता है। गुलाब के पौधों पर हिलफोल 1 मिली लीटर प्रति लीटर पानी में डालकर छिड़काव करने से लाल मकड़ी की समस्या धीरे–धीरे समाप्त हो जाती है। लाल मकड़ी की रोकथाम के लिए सूखा सल्फर का डस्टिंग करना भी काभी लाभकारी पाया गया है।

थ्रिप्स

थ्रिप्स एक सूक्ष्म आकार का भूरा रंग का कीड़ा है। इसका प्रकोप गर्मी के मौसम में ज्यादा होता है। यह फूल के अन्दर रहने वाला कीड़ा है। यह पुष्प की गुणवत्ता को घटा देता है। इसकी रोकथाम के लिए रोगर 1.0 मिली लीटर प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

रेड स्केल

रेड स्केल का प्रकोप गुलाब के पौधों में बहुत ज्यादा होता है। यह कीड़ा तनों पर चीपक कर पौधों से रस चूसते हैं। कुछ समय बाद तना सूखना शुरू हो जाता है तथा धीरे–धीरे गुलाब के पौधे मर जाते हैं। इससे बचाव के लिए रोगर 1–1.5 मिली लीटर या मोनोक्रोटोफास 1–1.5 मिली लीटर प्रति लीटर पानी में घोलकर पौधों पर छिड़काव करना चाहिए।

रेड स्केल

रोज चेफर

रोज–चेफर जुलाई–अगस्त में गुलाब के पत्तियों को खाते हैं। इनकी रोकथाम के लिए 0.2 प्रतिशत मैलाथियान के घोल का छिड़काव करें या किसी कीटनाशक पाउडर जैसे गैमेक्सीन का भुरकाव पौधों पर करें।

रोगः गुलाब के पौधों को प्रभावित करने वाले मुख्य रोग इस प्रकार हैंः

पाउड्री मील्ड्यू

पाउड्री मील्ड्यू का प्रकोप गुलाब के पौधों पर अक्सर पाया जाता है। इससे प्रभावित पौधों के पत्तियों के ऊपरी भाग पर सफेद पाउडर जम जाता है। तेज हवा चलने पर पाउडर एक पौधे से दूसरे पौधों के पत्तियों पर स्थानांतरित होता रहता है बाद में प्रभावित पत्तियां टेढ़ी–मेढ़ी हो जाती हैं तथा भूरा धब्बा बढ़ जाता है। इसका प्रकोप अधिक आर्द्रता तथा कम तापमान होने पर देखा जाता है। पॉलीहाउस में पाउडरी मील्ड्यू का प्रकोप गुलाब के पौधों पर कम होता है। इसकी रोकथाम के लिए कैराथेन 0.1 प्रतिशत या कलेविजन 0.03 प्रतिशत का घोल का छिड़काव गुलाब के पौधों पर करना चाहिए।

डाउनी मील्ड्यू

डाउनी मील्ड्यू का प्रकोप बरसात के मौसम में गुलाब के पौधों पर सर्वाधिक देखा गया है। इससे प्रभावित पन्तियाँ धीरे–धीरे पीली पड़ती जाती हैं तथा पत्तियों के ऊपरी भाग पर गोल आकृति के काले धब्बे पड़ने लगते हैं। इसका बहुत अधिक प्रकोप होने पर पत्तियां झड़ना शुरू हो जाती हैं तथा पौधों की बढ़वार बिल्कुल रूक जाती है। इसकी रोकथाम के लिए रीडोमील 0.2 प्रतिशत या डाईथेन एम–45 0.2 प्रतिशत घोल का छिड़काव पौधों पर करना चाहिए।

डाईबैक

हमारे देश में डाईबैक गुलाब के पौधों की एक बड़ी समस्या है। यह रोग जब पौधों की कटाई–छटाई करते हैं उसके बाद कटा हुआ भाग नीचे के तरफ सूखता जाता है। यदि इसकी रोकथाम समय पर नहीं हो पाती है तो पौधे मर जाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए गुलाब के पौधों की कटाई–छटाई करने के उपरान्त बाविस्टिन का 0.2 प्रतिशत का घोल बनाकर पौधों पर छिड़क देना चाहिए। इस रोग का प्रकोप होने के बाद गुलाब के पौधों से प्रभावित भाग को काट देना चाहिए तथा बाविस्टिन या 4 भाग कापर कार्बोनेट, 4 भाग रेडलेड और 5 भाग अलसी के तेल का अच्छी तरह मिश्रण बनाकर कटी शाखाओं के सिरे पर लेप लगाना चाहिए।

ब्लैक स्पाट

ब्लैक स्पाट वातावरण में अधिक आर्द्रता होने पर गुलाब के पौधों को ज्यादा प्रभावित करता है। इसका प्रकोप होने पर पत्तियों पर काले रंग के धब्बे पड़ जाते हैं तथा पत्तियां झडना शुरू हो जाती हैं। इससे प्रभावित गुलाब के पौधों की बढ़वार बिल्कुल ही रूक जाती है। जिसके कारण पुष्पन भी बहुत कम होता है। इसकी रोकथाम के लिए कैप्टान 0.2 प्रतिशत या बेनलेट 0.1 प्रतिशत के घोल का छिड़काव पौधों पर करना चाहिए।

गुलाब की किस्म पूसा अल्पना का लूज फ्लावर

गुलाब की किस्म रोज शरबत का लूज फ्लावर

ब्लैक स्पाट

पॉलीहाउस के निर्माण से पहले सूत्रकृमि के लिए मिट्टी परीक्षण

के क्रांति के.वी.वी.एस, विनोद कुमार, रामकेश मीना एवं गीता गुल्यानी
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110 012

पॉलीहाउस में सूत्रकृमियों का संक्रमण बहुत पाया जाता हैं। सूत्रकृमियों में नर व मादा दोनों ही पाए जाते हैं। परन्तु मादा की संख्या ज्यादा पाई जाती है। पारंपरिक तरीकों से इन्हें नियंत्रण करना आसान नहीं हैं। इसे देखते हुए कृषि में सूत्रकृमियों पर भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना (AICRP), भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110 012 और हरियाणा राज्य सरकार ने 2018 में पॉलीहाउस लगाने से पहले पॉलीहाउस/नेटहाउस की मिट्टी में सूत्रकृमि की जांच अनिवार्य कर दी। किसानो को अपने खेतो की मिट्टी से नमूने लेकर सूत्रकृमि परियोजना समन्वय कक्ष में जमा करने की सलाह दी जाती हैं। ताकि मिट्टी में जड़ गांठ सूत्रकृमि के होने का अनुमान लगाया जा सके और परिक्षण होने के बाद सूत्रकृमि की एक रिपोर्ट तैयार की जाती हैं और इन परिणामो के आधार पर किसानो के लिए पॉलीहाउस/नेटहाउस के निर्माण के लिए हरियाणा सरकार मदद प्रदान करती हैं।

पॉलीहाउस और नेटहाउस में खीरे, टमाटर और शिमला मिर्च जैसे सब्जियों की फसलों के साथ–साथ जरबेरा और कारनेशन जैसी फूलों की फसलों के लिए भी पादप परजीवी सूत्रकृमि हानिकारक हैं। पादप सूत्रकृमि के कारण पॉलीहाउस में सफल खेती नहीं की जा सकती। पादप परजीवी सूत्रकृमि देश भर में पॉलीहाउस में सफल खेती में बाधा उत्पन्न करने का मुख्य कारण बनते हैं। पॉलीहाउस के अंदर का वातावरण सूत्रकृमियों के अनुकूल होता हैं, और इससे उनकी संख्या में निरन्तर तीव्र गति से वृद्धि होती हैं। इस प्रकार रसायन विधि और अन्य पारंपरिक प्रथाओं से इन्हे नियंत्रित करना मुश्किल हैं। इसलिए हरियाणा सरकार ने इन सूत्रकृमि से पॉलीहॉउस की फसल को बचाने के लिए यह कदम उठाया। सरकार पॉलीहाउस/नेटहॉउस लगाने से पहले यह जरुरी कर दिया गया जहाँ पर पॉलीहाउस का निर्माण करना हैं। पहले उस खेत की मिट्टी की जाँच जड़–गांठ सूत्रकृमि के लिए अनिवार्य हैं।

प्रक्रिया

इसके सम्बंधित जिला बागवानी अधिकारी किसानों की खेत से मिट्टी के नमूने को लेकर जहाँ पर पॉलीहाउस/नर्सरी लगाना हैं। उन किसानों का नाम, भूमि सर्वेक्षण संख्या, तिथि, स्थान जैसे विभिन्न विवरणों को भारतीय समन्वित परियोजना कक्ष में जमा कराते हैं। सूत्रकृमि के परीक्षण के लिए मिट्टी के नमूने की प्रयोगशाला भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना की समन्वय कक्ष में जमा करना अनिवार्य कर दिया गया। उसके बाद यदि मिट्टी सूत्रकृमि से प्रभावित हैं तो एक नकारात्मक रिपोर्ट तैयार की जाती हैं। फिर यह रिपोर्ट राज्य के जिला अधिकारी को भेजी जाती हैं। इस रिपोर्ट का रिकॉर्ड भी रखा जाता हैं।

परिणाम

अब तक परियोजना समन्यवक कोष द्वारा मिट्टी के 3500 नमूनों का परिक्षण किया गया हैं। और इसके तहत लगभग 15% मिट्टी को जड़–गांठ सूत्रकृमि से संक्रमित पाया गया। इस प्रकार सूत्रकृमि से प्रभावित खेतों पर नए पॉलीहाउस का निर्माण नहीं किया गया और किसानों की फसलों में होने वाले नुकसान को कम किया गया। पॉलीहाउस उत्पादकों को अत्यधिक नुकसान से बचाव हुआ। किसानों को जड़–गांठ सूत्रकृमि से मुक्त खेतों में ही पॉलीहाउस बनाने की सिफारिश की गई। इसके

परिणामस्वररूप नर्सरी उत्पादकों को जागरूकता मिली की वह सूत्रकृमि मुक्त पौधों सुनिश्चित करने से पहले नर्सरी पौधों और मिट्टी का परीक्षण करवा ले। उसके बाद यह निर्धारित किया जाता हैं की किसानों को उनके नियंत्रण के लिए क्या सुविधाए और सुझाव दिए जा सकते हैं।

पॉलीहाउस के फायदे

- पॉलीहाउस लगाने से जो फसले बेमौसमी होती हैं उनका उत्पादन अच्छे से किया जा सकता।
- पॉलीहाउस में उगाई जाने वाली फसलों को बाज़ार में मूल्य भी समान्य फसलों के मुकाबले अधिक मिलता हैं।
- पॉलीहाउस में फसलों की उत्पादकता का खुले खेत के अनुसार 3–4 गुना ज्यादा मिलती हैं।
- पॉलीहाउस के कारण फसले ज्यादा सुरक्षित होती हैं क्योंकि फसले चारो और पॉलीहाउस से घिरी होती हैं।
- पॉलीहाउस में खेती करना किसानो के लिए ज्यादा लाभदायक होता है।
- पॉलीहाउस में फसलों के अनुसार तापमान को नियंत्रित किया जा सकता हैं और फसलों को कीटो व रोगो पर भी नियंत्रण मिलता हैं।
- पॉलीहाउस बनवाने के लिए सरकार किसानो को सब्सिडी प्रदान करती हैं।
- पॉलीहाउस से प्राप्त उत्पाद बाजार में अच्छे दामों में बिक जाते हैं।

निष्कर्ष

- इससे यह निष्कर्ष निकलता हैं के किसानों को सूत्रकृमि मुक्त मिट्टी और जगह का चयन करने में आसानी हो गई हैं और उन्हें पॉलीहाउस/नेटहाउस निर्माण के लिए सब्सिडी इसी आधार पर मिलने लगी है।

जड़ गांठ सूत्रकृमि से संक्रमित खीरा और टमाटर की फसलों पर जमीन के ऊपर के लक्षण

छाया में तीन जैव एजेंटों के साथ वर्मीकम्पोस्ट का संवर्धन

अच्छे उत्पादन हेतु अंगूर में छँटाई

मधुबाला ठाकरे, अरविन्द, चावलेश कुमार, एन.वी. सिंह एवं जय प्रकाश
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110 012

अंगूर एक शीतोष्ण जलवायु का फल है। यद्यपि इसका उत्पादन उष्ण एवं उपोष्ण क्षेत्रों में भी किया जाता है। अंगूर की बेल होती है इसलिए इसका प्रबंधन अन्य फल वृक्षों से भिन्न होता है और इसका प्रबंधन उगाये जाने वाले क्षेत्र पर निर्भर करता है। सबसे पहला कार्य इसकी संधाई अर्थात ट्रेनिंग का होता है जो कि बाग़ लगाने के शुरू के कुछ वर्षों में किया जाता है। इसके लिए अंगूर को भिन्न–भिन्न ट्रेनिंग सिस्टम जैसे कि शीर्ष (हेड), पंडाल (बावर), टेलीफोन, निफिन इत्यादि में लगाया जाता है। ट्रेनिंग सिस्टम का चयन स्थान विशेष की जलवायु तथा उत्पादक के संसाधनों पर निर्भर करता है। इसके पश्चात् जब अंगूर में फल लगना प्रारम्भ हो जाते हैं तो इसमें छँटाई का कार्य किया जाता है जो कि बहुत ही महत्वपूर्ण होता है।

अंगूर में छँटाई (प्रूनिंग) का स्तरः अंगूर की किसी भी किस्म में कितनी छँटाई करनी है अर्थात परिपक्व प्ररोह पर कितनी कलियाँ रखकर उसके ऊपर से छाँटना है, यह मुख्यतः तीन बातों पर निर्भर करता है। पहला उस किस्म का ओज कितना है, दूसरा उसे किस प्रणाली में सांधा गया है और तीसरा उस किस्म को किस स्थान (जलवायु) पर लगाया गया है। सामान्यतः किसी भी केन में जो आधार पर स्थित कलियाँ होती है वही सबसे पहले खुलकर बढ़ना प्रारंभ करती है और धीरे–धीरे यह क्रिया ऊपर की कलियों तक पहुंचती है। अधिक ओज वाली किस्मों जैसे कि 'पूसा सीडलेस' को 9–12, 'थॉमसन सीडलेस' को 10–15, और 'गुलाबी' को 10–15 कलियों तक छांटा जा सकता है। स्थान विशेष के अनुसार भी कलियों की संख्या का निर्धारण होता है जैसे कि पंजाब में 'थॉमसन सीडलेस' को 4 कलियों तक छांटा जाता है। इसके अलावा ऐसी किस्में जिनमें मध्यम ओज होता है जैसे कि 'भारत अर्ली', 'ब्यूटी सीडलेस', 'पर्लेट', 'न्यू पर्लेट', 'कार्डिनल', इत्यादि को 4–5 कलियों तक छांटा जाता है। यहाँ तक कि हरियाणा में 'ब्यूटी सीडलेस' और 'पर्लेट' को दो कलियों तक भी छांटा जा सकता है।

अंगूर में छँटाई (प्रूनिंग) का समयः उत्तर भारत में अंगूर की छँटाई दिसंबर के अंतिम सप्ताह से जनवरी के बीच के समय में की जाती है। इस समय अंगूर के पौधे सुषुप्त अवस्था अर्थात डोरमैनसी में रहते हैं। किंतु दक्षिण भारत में छँटाई दो बार की जाती है। प्रथम बार अक्टूबर–नवंबर में जो कि फल उत्पादन के लिए होती है। तथा दूसरी बार अप्रैल में, जो कि वानस्पतिक वृद्धि के लिए की जाती है। स्थान विशेष की जलवायु के अनुसार प्रूनिंग के समय में थोड़ा बदलाव हो सकता है। प्रूनिंग के समय में परिवर्तन करके अंगूर की उपलब्धता को भी बढ़ाया जा सकता है। जैसे कि महाराष्ट्र और आंध्र प्रदेश में 'थॉमसन सीडलेस' किस्म को सितंबर तथा 'अनाब–ए–शाही' को अगस्त के अंतिम सप्ताह में छँटाई करके फलों के पकने के समय दिसंबर–जनवरी के माह में किया जा सकता है। इसके अलावा एक ही क्षेत्र में कभी–कभी कुछ किस्मों को अलग–अलग समय पर प्रूनिंग या छँटाई की जाती है। उदाहरण के तौर पर बैंगलोर के आसपास, 'बैंगलोर ब्लू' किस्म की 5 से 20 अक्टूबर के दौरान छँटाई की जाती है क्योंकि 5 से 20 नवंबर के बीच छँटाई करने पर संतोषजनक कलियों का फुटाव एवं परिपक्वता नहीं मिल पाती। इसी तरह 'अनाब–ए–शाही' किस्म की 20 अक्टूबर के आसपास छँटाई करना चाहिए। यदि छँटाई, अक्टूबर के प्रथम सप्ताह में की जाती है तो डाउनी मिलडीव के आने की संभावना अधिक होती है। इन सभी तथ्यों से यह स्पष्ट है कि अंगूर की विभिन्न किस्मों में छँटाई का समय अलग–अलग क्षेत्रों में उद्देश्य के अनुसार भिन्न हो सकता है।

अंगूर में छँटाईः दक्षिण भारत में अंगूर की बेलें लगाने के 18 से 20 महीने बाद फल देना शुरू करती है। किंतु उत्तर भारत में उत्पादन के लिए प्लांटिंग से 3 साल तक का समय लग जाता है और इसके बाद अच्छा उत्पादन लेने के लिए प्रतिवर्ष छँटाई की आवश्यकता होती है।

अंगूर का उत्पादन मुख्यतः परिपक्व प्ररोह की संख्या पर निर्भर करता है। इसके अलावा दलपुट (स्पर) भी बहुत महत्वपूर्ण होते हैं। परिपक्व प्ररोह उसी सीज़न में फूल और फल उत्पन्न करते हैं। जबकि दलपुट (स्पर) मुख्यतः वनस्पति प्ररोह की वृद्धि करते हैं जो कि अगले वर्ष फल उत्पादन करने में सक्षम होते हैं। इसलिए अंगूर का पौधा किसी भी संघाई प्रणाली में क्यों ना लगा हो, इस बात का ध्यान रखा जाता है कि अंगूर के पौधे पर परिपक्व प्ररोह एवं दलपुट (स्पर) की संख्या में संतुलन रहे। जिससे कि अंगूर के पौधे के स्वास्थ्य को प्रभावित किए बिना उसमें प्रतिवर्ष अच्छी फलत ली जा सके। अंगूर की किसी भी किस्म में किस कली तक छँटाई की जाए जिससे कि उसमें उसी वर्ष वनस्पति परिपक्व प्ररोह मिले, यह पहले से ही निर्धारित होता है। किसान भाई अक्सर यह समस्या का सामना करते हैं उससे अधिक या कम कलियों तक छँटाई की गई तो परिपक्व प्ररोह के स्थान पर उसमें वानस्पतिक प्ररोह की वृद्धि होगी और अंगूर का उत्पादन प्रभावित होगा। अच्छी तरह से वृद्धि किया हुआ केन जिसकी मोटाई पेन्सिल के बराबर होती है को फलत के लिए छांटा जाता है। जबकि जो कमजोर या अधिक मोटे होते हैं उन्हें एक से दो कलियों तक छांटा जाता है। इन्हें दलपुट कहा जाता है जो कि अगले साल परिपक्व प्ररोह उत्पन्न करने में सक्षम होते हैं। दिल्ली और आसपास के इलाकों में 50% प्रतिशत केन को किस्म में निर्धारित कली के अनुसार तथा बाकी के 50% को 3–4 कलियों पर काटा जाता है। अंगूर में कलियों का फुटाव अलग–अलग समय पर होता है। उत्तर भारत में फरवरी–मार्च में फुटाव होता है। किंतु हिमालय क्षेत्र में अप्रैल–मई में कलियों का फुटाव होता है। दक्षिण भारत में वृद्धि के लिए अप्रैल–मई में तथा फलत के लिए अक्टूबर–नवंबर में कलियों का फुटाव होता है। कभी–कभी कलियों के फुटाव को जल्दी करने के लिए थायोयूरिया (2%) का सुषुप्त अंगूर की बेलों पर छिड़काव किया जाता है।

तालिका 1. उत्तर भारत की प्रमुख किस्मों में छँटाई का ब्योरा

किस्म	कलियों (गाठों) की संख्या
ब्यूटी सीडलेस	2–3
पर्लेट	3–4
पूसा सीडलेस	10–12
पूसा उर्वशी, पूसा अदिति, पूसा त्रिसार	4–6
पूसा नवरंग	4–6
फ्लेम सीडलेस	6–8
पंजाब मैक्स पर्पल	6–8

हर किस्म में कलियों की संख्या उत्पादन की गुणवत्ता एवं परिमाण को निर्धारित करती है। उदाहरण के तौर पर ‘ब्यूटी सीडलेस’ में नीफिन प्रणाली में 60 से 64 कलियाँ रखी जाती है। जबकि पंडाल (बावर) प्रणाली में 105 कलियाँ, टेलीफोन प्रणाली में 90 कलियाँ, तथा शीर्ष प्रणाली में 24 कलियाँ रखी जाती है।

छँटाई के उपरान्त ली जाने वाली सावधानियाँ

1. छँटाई के तुरंत बाद कॉपर ऑक्सीक्लोराइड का छिड़काव करना चाहिए। यदि बहुत मोटे प्ररोह काटे गए हैं तो कटे हुए भागों पर कॉपर ऑक्सीक्लोराइड का लेप लगाना चाहिये। इससे किसी भी तरह के संक्रमण की संभावना समाप्त हो जाती है।
2. छँटाई करते समय धारदार सिकेटियर का इस्तेमाल करना चाहिये। और उसे उपयोग के पहले और बाद में 70% अल्कोहल से डिसइंफेक्ट भी करना चाहिये।
3. यदि अंगूर की किसी किस्म के बारे में यह जानकारी न हो कि वह किस कली पर फूल देती है तो पिछले वर्ष के फलों के सूखे गुच्छे के आधार (पिछले वर्ष से जो बेल पर लटका हुआ होता है) पर इस बात की जानकारी ली जा सकती है।

उपोष्ण कटिबंधीय क्षेत्र में अंगूर के खेती में की जाने वाली वार्षिक सस्य क्रियाचक्र

जनवरी के तीसरे से चौथे सप्ताह तक

– प्रत्येक बेलों में उर्वरकों की पहली खेप का डालना व मिलाना इसके तुरन्त बाद सिंचाई की व्यवस्था।

अप्रैल दूसरे सप्ताह से तीसरे सप्ताह तक

– उर्वरकों की अन्तिम खेप व नियमित सिंचाई तथा नियामकों का उपयोग।

मई के अन्तिम सप्ताह से जून के अन्तः तक

– सिंचाई में नियंत्रण एवं मानसूनी बरसात से बचने के लिए फफूंदनाशी का छिड़काव (बाविस्टीन 2 प्रतिशत)।

जुलाई–अगस्त–सितम्बर

– नियमित सिंचाई, रोग एवं कीट का नियंत्रण।

छँटाई के पहले

छँटाई के बाद

छँटाई के पहले अंगूर की बेल में पिछले वर्ष के अंगूर के गुच्छे के आधार पर भी किसान इस बात का पता लगा सकते हैं कि उस किस्म में किस कली पर फूल एवं फल लगते हैं।

अधिक आय एवं पोषण हेतु अमरूद की रंगीन किस्मों की बागवानी

[1]संजय सिरोही, [2]एस. सी. राणा, [2]मनोज के. यादव एवं [2]एम. के. सिंह
[1]भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110012
[2]भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान क्षेत्रीय केन्द्र, करनाल

अमरूद का हमारे देश में व्यवसायिक फलों में महत्वपूर्ण स्थान है। इसमें विटामिन ए, सी, थायमिन, राइबोफ्लेविन, मैग्नीशियम, कैल्शियम, फॉस्फोरस, आयरन और फाइबर की प्रचुरता होती है। इसके फल कैनिंग, जैम, जैली, प्यूरी, नेक्टर, पेक्टिन, जूस आदि विभिन्न प्रसंस्कृत उत्पादों के लिए इस्तेमाल किए जाते हैं। अमरूद की जैली और प्यूरी विशेष रूप से उनके गहरे बैंगनी–लाल रंग, स्वाद और खुशबू के कारण लोकप्रिय हैं। अमरूद के पत्तों में भी विटामिन, खनिज और एंटीऑक्सीडेंट्स होते हैं और उनका औषधीय उपयोग किया जाता है। अमरूद को समशीतोष्ण, उष्णकटिबंधीय, और उपोष्णकटिबंधीय जलवायु में 1500 मीटर की ऊँचाई तक उगाया जा सकता है। यह कम उपजाऊ भूमि में भी अच्छी फसल देता है और साल में दो बार, मानसून और सर्दियों में फल देता है। सर्दियों की फसल गुणवत्ता के लिहाज से अधिक अच्छी मानी जाती है।

देश में अमरूद की खेती लगभग 359,000 हेक्टेयर में होती है और सालाना पैदावार लगभग 5.60 मिलियन टन है। उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, आंध्र प्रदेश, हरियाणा, पंजाब, पश्चिम बंगाल, छत्तीसगढ़, गुजरात, कर्नाटक, और महाराष्ट्र प्रमुख अमरूद उत्पादक राज्य हैं। भारत में अधिकतर सफेद गूदे वाले अमरूद की खेती होती है जैसे 'एल–49'/'सरदार', 'इलाहाबाद सफेदा', 'लखनऊ सफेदा', 'हिसार सफेदा', 'श्वेता', 'बनारसी' और कई अन्य किस्में। हालाँकि, हाल के वर्षों में लाल और गुलाबी गूदे वाले रंगीन किस्मों की लोकप्रियता बढ़ी है। ये किस्में न केवल अधिक आय देती हैं, बल्कि पोषक तत्वों में भी समृद्ध हैं।

लाल अमरूद की इन किस्मों में लाइकोपीन और एंटीऑक्सीडेंट्स की मात्रा अधिक होती है जो हृदय, त्वचा, और नेत्र स्वास्थ्य को बेहतर बनाने में उपयोगी हैं। ये रक्तचाप नियंत्रित करने, कैंसर की संभावना घटाने, प्रतिरक्षा प्रणाली मजबूत करने और पाचन शक्ति बढाने मे सहायक हैं। लाल अमरूद में पेक्टिन की अधिक मात्रा होने के कारण इसे जेली, जैम और पेस्ट को गाढ़ा बनाने में भी उपयोग किया जाता है। ये किस्में फल प्रसंस्करण, घरेलू बाजार और निर्यात के लिए उपयुक्त हैं।

पारंपरिक और विदेशी लाल किस्मों में 'रेड फ्लेश्ड', 'एप्पल गुआवा', 'इलाहाबाद सुरखा', 'रेड डायमंड', 'रूबी सुप्रीम', 'थाई मैरून', 'स्ट्रॉबेरी गुआवा', 'रेड इंडियन' और 'रेड मलेशियन' जैसी किस्में शामिल हैं। पिछले दशकों में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद और कृषि विश्वविद्यालयों ने लाल गूदे वाली किस्मों का विकास किया है जो व्यावसायिक बागवानी के लिए अनुशंसित हैं। इनमें 'पूसा आरुषि', 'अर्का रश्मि', 'अर्का किरण', 'पंजाब एप्पल गुआवा', 'पंजाब पिंक', 'पंजाब किरण', 'ललित', 'लालिमा' और 'हिसार सुरखा' प्रमुख हैं।

लाल अमरूद की किस्में अधिक पैदावार देती हैं, कम बढ़वार और फैलाव वाली होती हैं, जिससे वे सघन बागवानी के लिए भी उपयुक्त होती हैं। नई और आधुनिक तकनीकों का उपयोग करके, किसान बेहतर गुणवत्ता युक्त उत्पाद एवं अधिक लाभ ले सकते हैं। हमारे देश में पिछले कुछ वर्षो में विकसित अमरूद की रंगदार किस्में निम्न प्रकार हैं–

पूसा आरुषि (Pusa Aarushi): भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा 'पंत प्रभात' और 'अर्का किरण' के संकरण से इस किस्म को विकसित किया गया है। इसे राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली और मध्य भारत में व्यावसायिक खेती के लिए अनुमोदित किया गया है। इस

किस्म के फलों का गूदा गुलाबी तथा बीज छोटे, नरम व मुलायम होते हैं। फलों में एस्कॉर्बिक एसिड (156.82–179.23 मिलीग्राम/100 ग्राम गूदा), एंटीऑक्सीडेंट्स (7.9–8.9μ मोल ट्रॉलोक्स/100 ग्राम) और फ्लेवोनोइड्स की मात्रा अधिक होती हैं। टी.एस.एस. 12.50 से 13.60% होता है।

पंजाब पिंक (Punjab Pink): पंजाब कृषि विश्वविद्यालय द्वारा विकसित इस किस्म के फल मध्यम से बड़े आकार के तथा छिलका आकर्षक रंग का होता है। गर्मियों में फलों का रंग सुनहरा पीला तथा गूदा लाल रंग का और सुगंधित होता है। फल खाने मे मीठे होते है; टी.एस.एस. 10.50 से 12.00% तक होता है। लगभग 6 से 7 वर्ष पुराने पौधों से प्रति पेड़ 155 किलोग्राम तक औसत उपज प्राप्त होती है।

पंजाब किरण (Punjab Kiran): पंजाब कृषि विश्वविद्यालय द्वारा विकसित इस किस्म के फल मध्यम आकार के, गोल से आयताकार, गुलाबी गूदे वाले और नरम बीजों के साथ होते हैं। यह किस्म उच्च गुणवत्ता और पोषण से भरपूर है। एक पेड़ से औसतन 100–125 किलोग्राम फल उत्पादन होता है। यह किस्म ताजगी, स्वाद और बाजार में अपनी आकर्षक विशेषताओं के लिए जानी जाती है।

पंजाब एप्पल गुआवा (Punjab Apple Guava): पंजाब कृषि विश्वविद्यालय द्वारा विकसित एक विशेष किस्म है। इसके पेड़ गोलाकार फैलाव और झुकी हुई शाखाओं वाले होते हैं। चार वर्ष के पौधे से लगभग 60 किलोग्राम फल उत्पादन होता है। सर्दियों में फलों का रंग लाल और गर्मियों में हरा/पीला होता है। फल गोल, मध्यम आकार के, गहरे लाल छिलके और मुलायम गूदे वाले होते हैं जिसमें मध्यम आकार के बीज होते हैं।

अर्का किरण (Arka Kiran): भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बेंगलुरु द्वारा विकसित यह गुलाबी गूदे वाली किस्म मध्यम आकार (200–220 ग्राम) के गोल फलों के लिए जानी जाती है। इसका गूदा गहरे गुलाबी रंग का, टीएसएस 14–15% और बीज मध्यम नरम होते हैं। यह टेबल और प्रसंस्करण दोनों उद्देश्यों के लिए उपयुक्त है। रोपण के दो वर्षों बाद फल कटाई योग्य हो जाते हैं। पांच वर्ष पुराने उधान/बाग़ से लगभग 20 टन/एकड़ का फल उत्पादन मिल जाता है।

अर्का रश्मि (Arka Rashmi): भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बेंगलुरु द्वारा इस किस्म को 'कमसारी' और 'पर्पल लोकल' के संकरण से विकसित किया गया है इस किस्म के पौधे कम फैलाव वाले, फल मध्यम आकार (200–215 ग्राम) के, गोल एवं गूदा गहरे गुलाबी रंग का होता है। टी.एस.एस. 12–14% तथा बीज मुलायम होते हैं। फलों में एस्कॉर्बिक एसिड (235 मिलीग्राम/100 ग्राम), लाइकोपिन (4 मिलीग्राम/100 ग्राम) एवं एंटीऑक्सीडेंट्स की मात्रा अधिक होती है। फलों की पैदावार क्षमता 35 से 40 टन प्रति हेक्टेयर है।

ललित (Lalit): केंद्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ द्वारा विकसित गुलाबी गूदेवाली यह किस्म सघन बागवानी व मेडो बागवानी (Meadow Orchard System) हेतु उपयुक्त है। यह अमरूद की अधिक पैदावार देने वाली किस्म है। फलों का रंग लाल ब्लश के साथ केसरिया पीला होता है। इसका स्वाद मीठा और गूदे की बनावट अच्छी होती है। टी.एस.एस. 12% तथा बीज मुलायम होते हैं। फलों की औसत उपज 6–7 साल बाद प्रति पेड़ 100 किलोग्राम प्रति वर्ष है। इस किस्म के फल मध्यम आकार के होते हैं। इसके एक फल का वजन 185 से 200 ग्राम होता है। यह किस्म खाने एवं जूस बनाने के लिए उपयुक्त है।

लालिमा (Lalima): केंद्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ द्वारा विकसित इस किस्म का चयन 'एप्पल गुआवा' से किया गया है। इस किस्म के पौधे मध्यम ऊंचाई वाले, फल मध्यम आकार के (190 ग्राम), गहरे लाल रंग (क्रिमसन कलर) के, मुलायम बीज वाले, मीठे (टी.एस.एस. 15° ब्रिक्स) तथा अधिक भंडारण क्षमता वाले होते हैं। फलों की औसत उपज प्रति पेड़ 50 से 60 किलोग्राम प्रति वर्ष है एवं प्रति हेक्टेयर उत्पादन क्षमता 34 टन है।

हिसार सुर्खा (Hissar Surkha): हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय द्वारा विकसित इस किस्म का चयन 'एप्पल कलर' एवं 'बनारसी सुर्खा' किस्मों के संकरण से किया

गया है। इस किस्म के पौधे की ऊंचाई एवं फैलाव मध्यम व सघन है। फल गोल व गूदा गुलाबी रंग का होता है।

चित्तीदार (Chittidar): यह उत्तर प्रदेश की एक प्रचलित किस्म है। चित्तीदार किस्म के फल सफेदा के समान ही होते हैं सिवाय इसके कि इसमें फलों की सतह पर लाल रंग के धब्बे होते हैं। फल का आकार मध्यम, अंडाकार और चिकना होता है और इसका रंग हल्का पीला होता है। गूदा मुलायम, सफेद और स्वाद में मीठा होता है जिसमें एक हल्की सुवास होती है। यह किस्म आमतौर पर स्वादिष्ट और पोषण से भरपूर होती है।

इलाहाबाद सुर्खा (Allahabadi Surkha): यह लाल रंग की एक प्रचलित किस्म है। इस किस्म के पौधों का फैलाव गुंबद के आकार का और दोनों सिरों पर थोड़ा दबा हुआ होता है। इसके फलों व गूदे का रंग गुलाबी लाल तथा स्वाद मीठा होता है। बाहरी छिलका सेब जैसा लाल होता है पौधे गुंबद के आकार के सघन होते हैं। इन अमरूदों की खेती भारत के उत्तरी क्षेत्र में इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) के आस पास की जाती है।

काला अमरूद (Black Guava): अमरूद की यह किस्म बिहार कृषि विश्वविद्यालय द्वारा विकसित की गई है। इस किस्म के फल गहरे बैंगनी रंग के होते हैं। काला अमरूद का पौधा आमतौर पर छोटे से मध्यम आकार के सदाबहार पेड़ के रूप में विकसित होता है, जो औसतन 10 से 15 फीट (3 से 4.5 मीटर) की ऊंचाई तक पहुंचता है। यह किस्म एंटीऑक्सीडेंट से भरपूर होती है। इसमें 100 ग्राम फल में लगभग 250 मिलीग्राम विटामिन सी, विटामिन–ए और बी, अन्य मल्टीविटामिन और खनिजों के अलावा कैल्शियम और आयरन प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं।

रेड फ्लेश (Red Flesh): यह किस्म अपने गहरे लाल रंग के गूदे के लिए प्रसिद्ध है। इसमें लाइकोपीन और एंटीऑक्सीडेंट्स की भरपूर मात्रा पाई जाती है, जो स्वास्थ्य के लिए अत्यंत लाभकारी होती है। विशेष रूप से, यह किस्म कैंसर से लड़ने में सहायक मानी जाती है क्योंकि इसमें पाए जाने वाले एंटीऑक्सीडेंट्स शरीर में फ्री रेडिकल्स को कम करने में मदद करते हैं। रेड फ्लेश का स्वाद मीठा और रसीला होता है। इसके गहरे लाल रंग और पोषक गुणों के कारण, यह किस्म ताजे फल और प्रसंस्कृत उत्पादों जैसे जैम और जूस दोनों के लिए बहुत उपयुक्त है।

थाई पिंक (Thai Pink Guava): इस किस्म के फल देखने में आकर्षक और गूदा गुलाबी, मीठा, सुगंधित और रसीला होता है। फलों के बीज आकार में छोटे व खाने योग्य होते हैं। पके फलों का रंग पीला होता है। ताइवान पिंक अमरूद के पेड़ मध्यम ऊंचाई के लगभग 10–20 फीट तक के होते हैं। इस किस्म के फलों में विटामिन सी एवं एंटीऑक्सीडेंट भरपूर मात्रा में पाए जाते हैं।

रेड डायमंड अमरूद (Red Diamond Guava): 'रेड डायमंड' अमरूद की एक नई विदेशी किस्म है इसके फलों में बीज बहुत कम और मुलायम होते है जिससे इसे बीज रहित किस्मों में गिना जाता है। फलो का आकार बड़ा और वजन 400–800 ग्राम के बीच होता है। फल का गूदा गुलाबी रंग का होता है, जो आकर्षक और स्वाद में भी बहुत मीठा होता है। इसकी देखभाल अन्य अमरूद की किस्मों के समान ही की जाती है। अधिक गर्मी एवं हल्के ठंडे मौसम में भी इसकी उपज पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ता, यह 7 से 8 पीएच स्तर की काली और बलुई दोमट मिट्टी में अच्छा उत्पादन देता है।

अमरूद की रंगीन किस्मों की खेती किसानों के लिए एक लाभकारी खेती है। ये किस्में देखने मे आकर्षक और अच्छी सेल्फ लाइफ के कारण उपभोक्ताओं को अपनी और आकर्षित करती है जिससे किसानों को बाजार मूल्य अच्छा मिलता है। उच्च पोषण मूल्य के कारण, उपभोक्ता इन रंगीन किस्मों के फलों को खाना पसंद करते है। इन किस्मों का उपयोग प्रसंस्करण उद्योग में भी जैम, जेली और जूस जैसे उत्पादों के लिए बड़े पैमाने पर किया जाता है। इस तरह से अमरूद की रंगीन किस्मों की खेती किसानों की आय बढाने एवं उन्हें आत्मनिर्भर बनने मे महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

अधिक आय हेतु उत्तम कृषि क्रियाओं की प्रासंगिकता

मनजीत सिंह नैन, रश्मि सिंह एवं ज्योति रंजन मिश्रा
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110 012

विकासशील देशों में हैजा और टाइफाइड जैसे रोगों के बढ़ते प्रकोप जो अपर्याप्त स्वच्छता उपायों और प्रदूषित पेयजल का नतीजा है और विश्व भर में प्रतिरक्षा प्रणाली से समझौता किए लोगों यानी एचआईवी/एड्स आदि से ग्रसित व्यक्तियों की बढ़ती हुई संख्या के मद्देनजर सुरक्षित भोजन की आपूर्ति एक वैश्विक जोर का विषय बन गया है। विकसित देशों जैसे यूरोपीय संघ में खाद्य सुरक्षा के महत्व को हाल के वर्षों में फैले पागल गाय रोग (बीएसई) और मुंह खुर रोग के साथ–साथ पर्यावरण प्रदूषण संबंधी विशेष रूप से कीटनाशकों और आनुवांशिक रूप से रूपांतरित जीव (जीएमओ) के मुद्दों के साथ बल दिया गया है।

कुछ प्रमुख देशों जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका (7.0 किलोग्राम/हेक्टेयर), यूरोप (2.5 किलोग्राम/हेक्टेयर), ताइवान (17 किग्रा/हेक्टेयर) जापान (12 किग्रा/हेक्टेयर), कोरिया (6.6 किग्रा/है.) आदि में कीटनाशकों की खपत भारतीय उपभोग (0.5 किलो/हेक्टेयर) से बहुत अधिक है फिर भी हमारे पास खाद्य उत्पादों में कीटनाशक अवशेष की समस्या है, जो कि मुख्य रूप से फल और कृषि फसलों कीटनाशकों को मारने के लिए उपयोग किया जाता है, से उत्पन्न होते हैं। भारत में अन्य देशों के मुक़ाबले खाद्य उत्पादों में अधिक कीटनाशक अवशेषों के कारणों में मुख्य रूप में उपघटनीय कीटनाशकी का उपयोग ना करना है। अन्य देशों के द्वारा इस्तेमाल की जाने वाली कीटनाशक लगातार प्रकृति के नहीं हैं जबकि लगातार प्रकृति के कीटनाशक के अधिक उपयोग के कारण भारत में उनके अवशेष खाद्य उत्पादों में रहते हैं। कीटनाशकों के न्यायसंगत उपयोग के संबंध में किसानों में जागरूकता की कमी के कारण भोजन और कृषि उत्पादों में कीटनाशक के अवशेषों की समस्या है। अन्य कारण निम्न है:

1. रासायनिक कीटनाशकों का अंधाधुंध उपयोग
2. निर्धारित प्रतीक्षा अवधि को नहीं मानना
3. कम गुनवाता के कीटनाशकों का उपयोग
4. कीटनाशकों के विक्रेताओं द्वारा गलत सलाह और गलत कीटनाशकों की आपूति
5. डीडीटी और दूसरे प्रतिबंधित कीटनाशकों का जन स्वास्थय कार्यक्रमों में अभी भी उपयोग
6. कीटनाशक निर्माण इकाइयों से स्राव
7. शेष बचे कीटनाशकों का गलत निपटारा और पादप रक्षा उपकरणों की उचित सफाई का अभाव
8. बिक्री से पहले फलों और सब्जियों का कीटनाशकों से उपचार

वेक्टर से उत्पन्न बीमारियों से नियंत्रण बनाए और खाद्य उत्पादन की सतता हेतु कीटनाशकों को सामाजिक आवश्यकता के रूप में माना जाता है। अतः पर्यवेक्षित क्षेत्र परीक्षणों के आधार पर अच्छी/उन्नत कृषि पद्धतियों की सिफारिश करके कीटनाशकों के सुरक्षित उपयोग का विकल्प, प्रतीक्षा अवधि/फसल कटाई पूर्व अंतराल की सिफारिश करके खाद्य वस्तुओं में कीटनाशक अवशेष निर्धारित सुरक्षित सीमा के भीतर ही बने रहें और कृषि उत्पादन में कीटनाशक अवशेषों की निगरानी को अपनाया जाना चाहिए। कीटनाशकों के अवशेषों को कम करने और 1968 के कीटनाशक एक्ट के प्रावधानों को लागू करने के लिए कुछ कदम पहले ही उठाए गए हैं। भारत में किसानों को कीटनाशकों के दुष्प्रभाव, ज़रूरत–आधारित रासायनिक कीटनाशकों के उपयोग, सिफारिश की गई खुराक का उपयोग, सही अनुप्रयोग तकनीकों का इस्तेमाल, निर्धारित प्रतीक्षा अवधि की अवपालना, एकीकृत कीट प्रबंधन (आईपीएम) और जैविक खेती के लाभ की प्रथा के लिए किसानों को प्रशिक्षित करना शुरू कर दिया है। नतीजतन चावल और कपास जो मुख्य कीटनाशक–उपभोक्ता फसल हैं में कीटनाशकों की खपत में काफी कमी आई है। सन् 1994–95 के

दौरान रासायनिक कीटनाशकों की खपत 65462 मीट्रिक टन से 2001–02 में 47020 मीट्रिक टन तक कम हो गई और जैव–कीटनाशकों के उपयोग में 1996–97 के 219 मीट्रिक टन से 2001–02 में 909 मेट्रिक टन तक की वृद्धि हुई।

माइक्रोबियल खादय सुरक्षा की चिंता और खाद्य सुरक्षा मानकों को बदलने के परिणामस्वरूप बढ़ते प्रकोपों से जनता के ज्ञान में वृद्धि, सूचना की उपलब्धता और सक्रियता, वैज्ञानिक ज्ञान में वृद्धि, बेहतर निगरानी में वृद्धि, मूल्यवर्धित अवसरों में तेजी, घरेलू और आयात व्यापार और भूमि उपयोग और अपशिष्ट प्रबंधन में वृद्धि दर्ज की गई है । खाने वाले पदार्थों में परिवर्तन जैसे कि जोखिमयुक्त खाद्य पदार्थ जैसे कटा हुआ पदार्थ, सलाद, कम से कम संसाधित/पूर्व–तैयार, आयातित खाद्य पदार्थ (वर्षभर की उपलब्धता) और हरी प्याज के रूप में जोखिम वाले उत्पादन की बढ़ती लोकप्रियता, कैलान्ट्रो (16% पॉजिटिव सॅल्मोनेला और शिगेला) मेस्कुलेशन/स्प्रिंग मिक्स, अंकुरित बीज, अनपस्चुरिज्ड रस और खरबूजे खाद्य सुरक्षा और इसकी गुणवत्ता के बारे में प्रेरणा शक्ति है। संभावित संदूषण स्रोतों में शामिल हैंः सिंचाई जल, जैविक खाद (जानबूझकर और आकस्मिक) उत्पादन और फसल की प्रक्रिया के दौरान अपर्याप्त क्षेत्र स्वच्छता, प्रसंस्करण आदि के दौरान पानी से संक्र्मण, हैंडलिंग के दौरान क्रॉस संदूषण और खाद्य उत्पादों के वितरण के दौरान अपर्याप्त स्वच्छता। सुरक्षित खाद्य उत्पादन और खाद्य सुरक्षा, गुणवत्ता और पर्यावरणीय स्थिरता के बारे में कई हितधारकों की चिंताओं और प्रतिबद्धताओं के परिणामस्वरूप तेजी से बदलते हुए और खाद्य अर्थव्यवस्था के वैश्वीकरण संदर्भ में हाल ही के वर्षों में जीएपी (उन्नत कृषि अवधारणा) की अवधारणा विकसित हुई है। कृषि उत्पादों की गुणवत्ता में सुधार, कृषि क्रिया की निगरानी, कटाई और प्रसंस्करण की निगरानी के रूप में जीएपी अस्तित्व में आ गया है। जीएपी का मुख्य उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि पादप सामग्री उपभोक्ताओं की मांग और उच्च गुणवत्ता के मानकों को पूरा करती हो। यह सामान्य प्रिंसिपलों का वर्णन करता है और गुणवत्ता नियंत्रण उपायों के साथ खेती के लिए तकनीकी विवरण प्रदान करता है। इसमें प्राथमिक उत्पादक से व्यापारियों तक उत्पादन प्रक्रिया के प्रतिभागियों को स्वैच्छिक रूप से दिशानिर्देशों का पालन करना और उन्हें समझने के लिए व्यावहारिक उपाय विस्तृत करना आवश्यक है।

हितधारकों में सरकारें, खाद्य प्रसंस्करण और खुदरा उद्योग, किसान, कृषि मजदूर, और उपभोक्ता, वे सभी जो मध्यम और दीर्घकालिक दोनों में खाद्य सुरक्षा, खाद्य गुणवत्ता, उत्पादन क्षमता, आजीविका और पर्यावरण लाभ के विशिष्ट उद्देश्यों को पूरा करने की कोशिश करते हैं। शब्द जीएपी के विभिन्न हितधारकों के लिए अलग अर्थ और प्रभाव हैं। उदाहरण के लिए, जीएपी अंतरराष्ट्रीय नियामक ढांचे और प्रथाओं के संबद्ध कोड में भोजन के प्रदूषण को कम करने या रोकने के लिए औपचारिक रूप से मान्यता प्राप्त शब्दावली के रूप में प्रयोग किया जाता है। अच्छे कृषि व्यवहार (जीएपी) वे व्यवहार हैं जो खेती प्रक्रियाओं के लिए पर्यावरणीय, आर्थिक और सामाजिक स्थिरता को संबोधित करते हैं, और परिणामस्वरूप सुरक्षित और गुणवत्ता वाले भोजन और गैर–खाद्य कृषि उत्पाद मिलता है। इसमें किसानों के बाजारों के अनूठे उत्पादक–से–उपभोक्ता संबंध इसे पारंपरिक खाद्य खुदरा विक्रेताओं से अलग है। आकस्मिक पर्यवेक्षक यह एहसास नहीं कर सकता है कि इस जमीनी रिश्ते को प्राप्त करने और बनाए रखने के लिए पीछे के बहुत प्रबंधन, समय, काम, और निश्चित रूप से पैसे की आवश्यकता होती है। एक किसानों के बाजार को चलेने के लिए सप्ताह के बाद सप्ताह, वर्ष के बाद वर्ष के लिए आवश्यक वित्त पोषण प्रदान करना जटिल और श्रम–गहन रूप में ही भौतिक बाजार चलाने के रूप में हो सकता है।

भारत की बुनियादी ताकत कृषि है। लेकिन इसकी विशाल क्षमता का पूरी तरह से फायदा नहीं हुआ है। इस मार्केट की क्षमता को कृषि में सुधार और गुणवत्ता और खाद्य सुरक्षा के क्षेत्र में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्धी उत्पादन के माध्यम से किया जा सकता है। कृषि उत्पाद को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्धात्मक बनाने के लिए दीर्घकालिक सुधार और स्थिरता के लिए वाणिज्यिक कृषि उत्पादन के ढांचे के भीतर विश्व स्तर पर स्वीकृत अच्छी कृषि प्रक्रियाओं (जीएपी) की

अवधारणा को शामिल करने वाले अभिनव कृषि पद्धतियों को महत्वपूर्ण बनाना जरूरी है। अच्छी कृषि प्रक्रियाओं का कार्यान्वयन संसाधनों के इष्टतम उपयोग जैसे कि कीटनाशकों, उर्वरक, जल और पर्यावरण–अनुकूल कृषि को बढ़ावा देगा। यह फसल से पूर्व और बाद के निपटने और अन्य रसदों को एकीकृत करने में भी ध्यान रखता है। गैप (जी ए पी) उन क्षेत्रों में महत्वपूर्ण है जहां विनियमित नियंत्रण उपायों को मजबूत किया जाना हो और खेतों से कच्चे माल का उत्पादन वांछनीय गुणवत्ता के उत्पाद की निरंतर आपूर्ति हेतु सुनिश्चित करना जरूरी हो।

जीएपी के उद्देश्य

- खाद्य श्रृंखला में सुरक्षा और उत्पाद की गुणवत्ता सुनिश्चित करना
- आपूर्ति श्रृंखला प्रशासन को संशोधित करके नए बाजार लाभों को कैप्चर करना
- प्राकृतिक संसाधनों में सुधार, श्रमिक स्वास्थ्य और काम की स्थिति,
- नए बाजार का निर्माण करना
- विकासशील देशों में किसानों और निर्यातकों के लिए अवसर
- अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा
- पर्यावरण नियंत्रण
- किसान स्वास्थ्य
- सतत् विकास

अतः मूल तत्वों में शामिल हैं; स्वच्छ हाथ, साफ मिट्टी, स्वच्छ पानी और साफ सतह। इस संबंध में प्रमुख चिंताएं हैं;

- समस्याओं के होने से पहले निवारण
- जोखिम आकलन
- सभी स्तरों पर खाद्य सुरक्षा के प्रति प्रतिबद्धता
- परिचालन स्तर पर अनिवार्य कर्मचारी शिक्षा कार्यक्रम
- क्षेत्र और उपकरण स्वच्छता
- एकीकृत कीट और फसल प्रबंधन
- निगरानी और प्रवर्तन
- उत्पादन श्रृंखला भर में संचार पर ज़ोर
- स्वतंत्र, तृतीय–पक्ष ऑडिट के जरिए सत्यापन

गेप में मृदा, जल, फसल और चारा उत्पादन, फसल उत्पादन, पशु उत्पादन, पशु स्वास्थ्य और कल्याण, फसल और ऑन–फार्म प्रोसेसिंग और संग्रहण, ऊर्जा और अपशिष्ट प्रबंधन, मानव कल्याण, स्वास्थ्य और सुरक्षा, वन्यजीव और लैंडस्केप शामिल हैं।

जीएपी को अपनाने के अपेक्षित लाभ

- क्षेत्रीय स्तर पर बुनियादी ढांचे का विकास
- किसानों द्वारा अच्छी कृषि पद्धतियों के लिए उन्नत सस्य प्रक्रियाओं का निर्माण
- विभिन्न आकारों के बावजूद खेतों में एक समान दृष्टिकोण
- अच्छी गुणवत्ता और सुरक्षित भोजन के उपभोग की आवश्यकता के बारे में किसानों और उपभोक्ताओं के बीच जागरूकता में वृद्धि
- खाद्य श्रृंखला के पूर्ण एकीकरण के माध्यम से ट्रेसीबिलिटी (पता लगाने की क्षमता)
- पर्यावरण और साथ ही मिट्टी की उर्वरता में सुधार
- आय सुरक्षा और कल्याण
- अच्छी गुणवत्ता और सुरक्षित उपज के निर्माता के रूप में अंतर्राष्ट्रीय बाजार में प्रतिष्ठा और कृषि उत्पादों के निर्यातकों का सामना करने वाले व्यापार (टीबीटी) की तकनीकी बाधाओं को हटाना।
- टिकाऊ उत्पादन को बढ़ावा
- ऑन–फार्म प्रबंधन में सुधार
- उत्पादों के मूल्य में वृद्धि
- वैश्विक मान्यता प्रणाली की अखंडता
- छोटे धारकों के लिए बाजार पहुंच

- खरीदार की आवश्यकताओं के अनुसार उत्पादन
- जिम्मेदार और टिकाऊ उत्पादन के माध्यम से खुदरा विक्रेताओं और उपभोक्ताओं को विश्वास दिलाना
- प्रमुख खुदरा समूहों के लिए स्वीकार्य न्यूनतम मानक का अनुपालन
- वाणिज्यिक कृषि उत्पादन में आईपीएम और आईसीएम शामिल करना
- एचएसीसीपी सिद्धांतों का समर्थन
- खरीदार और उसके परिवार के लिए भोजन को सुरक्षित और स्थायी बनाना
- वैश्विक स्तर पर उन्नत कृषि प्रणालियाँ सुरक्षित और टिकाऊ खाद्य उत्पादन के लिए व्यापार से व्यापार के मानक है।
- उपभोक्ता मांगें हमारे सुधार और विकास प्रयासों को संचालित करती हैं। इसमें यह जाना जाता है कि आप क्या चाहते हैं।
- यह एक स्थायी कृषि श्रमिकों के कल्याण और सुरक्षा पशु कल्याण और पर्यावरण के बारे में सूचित करने के लिए एक उपभोक्ता जागरूकता अभियान है ।

गैप प्रमाणन के लिए सर्टिफिकेशन ऑप्शन

आवेदक दो विकल्प (व्यक्तिगत या समूह प्रमाणन) में से किसी एक के तहत प्रमाण पत्र के लिए आवेदन कर सकते हैं। विकल्प प्रमाणन के लिए आवेदन करने वाली कानूनी इकाई के संविधान पर आधारित है। प्रमाणन के लिए निम्नलिखित विकल्प उपलब्ध होंगे।

विकल्प 1 व्यक्तिगत प्रमाणन

यह व्यक्तिगत उत्पादक प्रमाणीकरण के लिए लागू होता है और प्रमाणीकरण प्राप्त करता है। निर्माता को एक व्यक्ति (व्यक्तिगत) या व्यवसाय (व्यक्तिगत या उत्पादक समूह) के रूप में परिभाषित किया जाता है जो उत्पाद के उत्पादन के लिए कानूनी तौर पर जिम्मेदार है और उस कृषि व्यवसाय द्वारा बेचा जाने वाले उत्पादों के लिए कानूनी जिम्मेदारी है।

गुणवत्ता प्रबंधन प्रणाली (क्यूएमएस–क्वालिटी मैनेजमेंट सिस्टम) के कार्यान्वयन के बिना मल्टीसाइट

व्यक्तिगत उत्पादक या एक संगठन कई उत्पादन स्थान या उत्पादन प्रबंधन इकाइयों (पीएमयू) का मालिक है जो कानूनी रूप से अलग अलग संस्था के रूप में कार्य नहीं करते हों और गुणवत्ता प्रबंधन प्रणाली (क्यूएमएस) ना होने पर लागू होती हैं। क्यूएमएस कार्यान्वयन के प्रमाणन प्रक्रिया का विवरण आईजीएपी 03 में दिया है।

विकल्प 2 समूह प्रमाणन

यह एक निर्माता/किसान समूह, समूह प्रमाणन और किसान समूह के लिए लागू होता है। समूह प्रमाणीकरण का विवरण समूह प्रमाणन प्रक्रिया (आईजीएपी 03) में दिया गया है। यह योजना सभी किसानों/उत्पादकों या संगठनों के लिए खुली है जो भारत में कानूनी संस्थाएं हैं। अच्छे कृषि उत्पाद के लिए प्रमाणीकरण प्राप्त करने की जानकारी क्यूसीआई की वेबसाइट पर भी उपलब्ध है। प्रमाणीकरण, प्रमाणन निकायों (सीबीएस) द्वारा प्रमाणीकरण योजना के लिए मान्यता प्राप्त आईएसओ/आईईसी गाइड 65/आईएसओ आईईसी 17065 के अनुसार एनएबीबी या अनुमोदित क्यूसीआई द्वारा किया जाता है। इस योजना के तहत संचालित करने के लिए सीबीएस को आईएसओ/आईईसी गाइड 65/आईएसओ आईईसी 17065 के लिए मान्यता के दायरे के विस्तार की आवश्यकता होगी।

प्रमाणीकरण के लिए अनुपालन स्तर

निर्माता को जीएपी मानक में निर्धारित तीन प्रकार के अनुपालन मानदंडों का पालन करने की आवश्यकता है। यह महत्वपूर्ण प्रमुख और सूक्ष्म हैं जो प्रमाणन से पहले सभी मामलों में पूर्ण होने चाहिए। अनुपालन को हां (अनुपालन के लिए) नहीं (अनुपालन के लिए नहीं) के साथ चेकलिस्ट पर इंगित किया जाता है। प्रत्येक नियंत्रण मानदंड के लिए साक्ष्य/टिप्पणियां प्रदान की जानी चाहिए– ये घटना के बाद लेखापरीक्षा निशान की समीक्षा करने में सक्षम होंगी और इसमें मूल्यांकन के दौरान किए गए संदर्भों के विवरण शामिल होंगे। हालांकि सभी बाहरी मूल्यांकन

आत्म–आकलन और आंतरिक मूल्यांकन में निरीक्षण किए गए सभी महत्वपूर्ण और प्रमुख अनुपालन मानदंडों के लिए सबूत/टिप्पणी देने अनिवार्य है।

अनुपालन का स्तर निम्न के आधार पर स्थापित किया जाएगाः

क) महत्वपूर्ण – सभी लागू महत्वपूर्ण नियंत्रण बिंदुओं का 100% अनुपालन

बी) मुख्य– सभी लागू (लापता) प्रमुख नियंत्रण बिंदुओं का 90% अनुपालन अनिवार्य है

सी) सभी लागू सूक्ष्म नियंत्रण बिंदुओं के न्यूनतम – 75% अनुपालन अनिवार्य है।

आवेदन पंजीकरण आवेदक द्वारा प्रदान किए गए दस्तावेज साइट मूल्यांकन रिपोर्ट और मूल्यांकन और प्रमाणीकरण के लिए रिपोर्टों की समीक्षा पर सर्टिफिकेशन बॉडी सभी प्रमाणन गतिविधियों का रिकॉर्ड बनाएगी।

शुल्क

यूनिट की भौगोलिक स्थिति, यूनिट के आकार के बीच किसी भी भेदभाव के बिना योजना के विभिन्न गतिविधियों के लिए ग्राहक से शुल्क लिया जाएगा। प्रमाणन संस्था की शुल्क संरचना सार्वजनिक रूप से पहुंच योग्य होगी और अनुरोध पर उपलब्ध भी कराई जाएगी। प्रमाणन संस्था प्रमाणन देने से पहले ग्राहकों को इसकी शुल्क संरचना को सूचित और सहमति प्रदान करेगा। जैसा कि और जब कोई शुल्क बदलेगा तो उसे स्वीकृति के लिए प्रमाणन की इस योजना के तहत प्रमाणित सभी आवेदकों और ग्राहकों को सूचित किया जाएगा।

पशुओं में नवजात बच्चों का मृत्यु दर रोकने के उपाय

राकेश कुमार सिंह[1], विनय कुमार सिंह[2] एवं पंकज नौटियाल[3]
[1]कृषि विज्ञान केन्द्र–II, लखीमपुर–खीरी
[2]भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ
[3]कृषि विज्ञान केन्द्र–II, हरदोई

संकर नस्ल के बछिया में उनके प्रथम व्यात तक मृत्युदर लगभग 30 प्रतिशत देखी गयी है जिसमें लगभग 20 प्रतिशत बछियों की मौत उनके तीन माह की उम्र में ही हो जाती है। अतः नवजात बच्चों के जीवन के प्रारंभिक अवस्था में उचित प्रबंन्धन पर ज्यादा ध्यान देने की आवश्यकता है जिससे उनमें मृत्यु दर को कम किया जा सके। आज की बछिया कल की होने वाली गाय है। जन्म से उसकी अच्छी तरह प्रबंधन की जाये तो अच्छी गाय/भैस बन सकती है। अगर जन्म के समय ही बछिया का वजन लगातार तेजी से बढ़ता है तो वह सही समय पर गाय/भैस बन जाती है ।

प्रसव के दौरान एवं प्रसव के पश्चात बछड़े/बछिया की देखभाल निम्न तरीको से सिलसिलेवार करना चाहिए जिससे उनमें मृत्युदर कम हो सके।

1. प्रसव की प्रक्रियाः बछड़े–बछड़ियों को ब्याने की प्रक्रिया कुल समय 30 मिनट से 2.5 घंटों का हो सकता है। अगर इसमें 2.5 से 3 घंटे से अधिक समय लग रहा हो तो इसका मतलब है बछड़े/बछड़िया का कोई अंग या भाग मॉ के योनि में फंस रहा है। अतः चिकित्सक की मदद से बच्चे को बाहर निकालना चाहिए अन्यथा शिशु की मृत्यु होने का खतरा बढ़ जाता है।

2. बच्चों का साँस लेनाः बच्चे को जन्म के 30 सेकण्ड से 1 मिनट के पश्चात साँस लेना शुरू कर देना चाहिए अगर साँस लेना शुरू नहीं करता है तो बच्चे की नाक मुंह की सफाई साफ कपड़े से करना चाहिए साथ ही उसके पिछला भाग उठाकर कृत्रिम साँस देना शुरू कर देना चाहिए।

3. बछड़े–बछड़ियों की सफाईः बछड़े–बछड़ियों के जन्म के बाद उसके नाक मुँह की सफाई साफ कपड़े से करना चाहिए, साथ ही उसके पुरे बदन को कपड़े से रगड़कर अच्छी तरह सुखा देना चाहिए। बछड़े–बछड़ियों की सफाई के लिए हम उसकी माँ की मदद ले सकते हैं। इसके लिए बच्चों को उसके माँ के पास बाँधकर रखना चाहिए जिससे माँ अपनी जीभ से बच्चों को चाट चाट कर सुखा देती है। इस विधि से माँ तथा बच्चों दोनो को लाभ पहुँचता है। माँ को प्राकृतिक लवण मिनिरल की पूर्ति के साथ–साथ बच्चे की शरीर में रक्त का संचार भी बढ़ता है। बछड़े–बछड़ियों की व्याने के एक घंटे के अन्दर अपने पैरों पर खड़ा हो जाना चाहिए। अन्यथा किसी के सहारे खड़े करने की कोशिस करनी चाहिए।

4. नाभि नाल को काटनाः शिशु जन्म के पश्चात नाभि नाल ही एक ऐसा रास्ता है जिससे रक्त में संक्रमण हो जाता है और नाभि नाल में सूजन तीव्र बुखार तथा घुटने में सूजन की बीमारी का खतरा बढ़ जाता है नाभि नाल को काटने में सावधानी की जरूरत होती है। नाल को बच्चे की शरीर से 2–3 इंच छोटे धागे से कसकर बांधने के पश्चात ही नये ब्लेड या कैची से काटना चाहिए इसके बाद नाल को 10 प्रतिशत आयोडीन के घोल में 1 मिनट तक डुबो कर रखना चाहिए।

5. खीस पिलानाः बछड़े–बछड़ियों के ब्याने के 1.5–2.0 घंटे के अन्दर खीस पिला देना चाहिए। खीस पिलाने के लिए जेर गिरने की राह नहीं देखनी चाहिए। खीस पिलाने से बच्चों को कई खतरनाक रोगो से बचाव होता है। बच्चों को उसके वजन का 10 प्रतिशत खीस प्रत्येक दिन व्याने के 3–4 दिन तक देना चाहिए। एक बार में 500 ग्राम से अधिक खीस नही पिलाना चाहिए। गाय की खीस निकालकर तुरन्त ही जब खीस गरम ही रहे साफ बर्तनों से पिलाना चाहिए बच्चे बर्तन से दूध पीना आसानी से सीख लेते हैं। इसके लिए पतले अंगुली को दूध के बर्तन में डालकर बच्चे के मुँह के पास

ले जाना चाहिए। बच्चे पहले अगुली चाटते हैं फिर दूध पीने लगते हैं। कभी कभी ऐसा भी होता है किसी कारणवश माँ बच्चे व्याने के पश्चात खीस ही नहीं है या गाय की मृत्यु हो जाती है। ऐसी परिस्थिति में कोई और गाय आस–पास ब्याई हो तो उसका खीस पिलाया जा सकता है। अन्यथा बच्चे को कृत्रिम खीस साधारण दूध 500 मिली, अरंडी का तेल 15 मिली, अंडे की जरदी घर पर बनाकर पिलाना चाहिए। कृत्रिम खीस दिन में तीन बार पिलाना चाहिए।

6. प्रथम गोबर निकालनाः ब्याने के 2–2.5 घंटे के पश्चात बच्चे को पहला गोबर कर देना चाहिए अन्यथा 10–15 मिली अरंडी का तेल पिला देना चाहिए जिससे प्रथम गोबर निकल आयेगा। यदि मलद्वार बन्द है तो तुरन्त चिकित्सक के पास जाना चाहिए।

7. बच्चों को दूध पिलाने की विधि

(अ) प्राकृतिक विधिः बछड़े–बछड़ियों को गाय के साथ रखकर पालन किया जाता है। इस विधि से दूध दुहने से पूर्व बच्चों को सीधे थन से दूध पिलाया जाता है जिससे दूध थन से निकलना शुरू हो जाता है और फिर दूध निकालने के बाद बच्चों को माँ के पास खुला छोड़ देते हैं। जिससे बच्चा मन मुताबिक दूध पी लेता है। यह विधि आमतौर पर गाँवों में प्रचलित है। इस विधि से कई हानिया भी हो सकती है जैसे गाय के द्वारा दूध की दी जाने वाली मात्रा का सही–सही पता नहीं लगता है, माँ से बच्चों की बीमारी आ सकती है। बच्चों के पोषण पर खर्च अधिक होता है। यदि बच्चा मर जाये या बेच दिया जाय तो गाय दूध देना बन्द कर देती है।

(ब) बच्चों को माँ से अलग कर पालन पोषण (विनिंग) करनाः इस विधि में बच्चे को 24 घंटे के अन्दर माँ से अलग कर देते है। तथा बच्चे का पालन पोषण वैज्ञानिक विधि से किया जाता है। प्राकृतिक विधि से पालन में होने वाली कठिनाइयों से निजात पाने में यह सहायक है इस विधि से पोषण करने पर बच्चों को निश्चित मात्रा में दूध पिलाया जाता है। बच्चे की मृत्यु के पश्चात भी माँ दूध देती है और बच्चे के झुण्ड में किसी भी समय बाहर निकाल सकते हैं।

(स) दुग्धपान करानाः 4–5 दिन तक खीस पिलाने के पश्चात बच्चों को 2.0–2.5 लीटर तक प्रतिदिन दूध पिलाना चाहिए। दूसरे संप्ताह से यह मात्रा बढ़ाकर 3.5 लीटर तक कर देनी चाहिए तथा इसे 6–7 सप्ताह तक देते रहना चाहिए दो माह बाद दूध की मात्रा शिशु के भार के 20 प्रतिशत हिस्से के बराबर देना चाहिए। पिलाने के पश्चात बच्चे का मुँह साफ एवं गीले कपड़े से पोंछ देना चाहिए। एक माह पश्चात बच्चों को दूध पिलाने के साथ धीरे–धीरे गेहूँ का चोकर, दलिया पिसा हुआ एवं मक्का इत्यादि 0.5–2.0 किग्रा खाने की आदत डालना चाहिए साथ ही यह सुनिश्चित करना चाहिए कि उक्त दाने में प्रति दिन 10 ग्राम मिनिरल मिक्सर अवश्य होना चाहिए।

8. बच्चों के लिए आवास व्यवस्थाः 6 माह की उम्र तक प्रत्येक बच्चे को अलग–अलग रखना चाहिए, अलग अलग रखने के लिए तार की मोटी जाली के 1 मीटर के व्यास से गोल घेरा बना लें जिसके अन्दर एक बच्चे को रखा जा सकता है। बछड़ा घर में पक्के आयताकार एक लाइन में 1.2 मी. एवं 1.5 मीटर के खाने बना सकते हैं जिससे एक बच्चा एक खाने में रखा जा सके। 6 माह बाद बच्चे को समूह में रखा जा सकता है। बच्चे का आवास साफ एवं सूखा होना चाहिए। जिससे निमोनिया आदि बीमारी से बचाव किया जा सके। बच्चे का आवास ऐसा होना चाहिए जहाँ सूर्य का प्रकाश सीधे आवास में आता हो तथा वायु का संचार भी पर्याप्त होना चाहिए। आवास को गर्मी में गर्म हवा से तथा जाड़े में ठन्डी हवा से बचाव की व्यवस्था होनी चाहिए।

9. बीमारियों से बचावः 1.5 से 2 माह की उम्र के पश्चात बच्चों को पेट की कीड़े मारने की दवा पिपराजीन एबेन्डाजोल आदि अवश्य देनी चाहिए, यह दवा साल में दो बार अवश्य देनी चाहिए। उम्र के तीन माह के पश्चात मुँहपका, खुरपका नामक बीमारी के रोकथाम के लिए टीका जरूर लगवाना चाहिए। इस टीके के पश्चात गलाघोंटू बीमारी का टीका लगवाना चाहिए। समय–समय पर बच्चों के शरीर पर वाह्य चिचड़ो की रोकथाम के लिए पशुचिकित्सक की सलाह से ब्यूटाक्स आदि दवा का छिड़काव करना चाहिए। जिससे उसके वजन बढ़ने में मदद मिल सके।

वर्मीकम्पोस्ट उत्पादन– महिला किसान की सफलता की कहानी

रीतू सिंह, डी.के. राणा एवं बृजेश यादव
कृषि विज्ञान केन्द्र, उजवा, नई दिल्ली–110 073

श्रीमती राकेश, एक किसान की बेटी हैं, जिनकी शैक्षिक योग्यता एम.ए. बी.एड. है। पहले वह अपने खेत में गोबर की खाद का प्रयोग करती थी जिसके कारण उनकी फसल में दीमक लग जाती थी और फसल इतनी अच्छी नहीं होती थी। दीमक लगने से खेत की पैदावार में भारी नुकसान होने लगा। फसल कमजोर होने के कारण उन्हें अपनी फसल में पेस्टीसाइड का छिड़काव करना पड़ता था। फिर राकेश ने सोचा कि अपनी फसल में किसी और प्रकार का खाद प्रयोग करना चाहिए, जिससे फसल अच्छी प्राप्त हो, अच्छी गुणवत्ता वाली फसल मिले और जहरीले केमिकल के छिड़काव से भी मुक्ति मिल जाए। यही सोचकर उन्होंने ठान लिया कि उन्हें अब वर्मीकंपोस्ट बनाने का प्रशिक्षण लेना चाहिए।

तकनीकी हस्तक्षेप

श्रीमती राकेश ने केंचुआ खाद उत्पादन की तकनीकी जानकारी के लिए कृषि विज्ञान केन्द्र, उजवा में गई। वहां से उन्होंने केंचुआ खाद बनाने का प्रशिक्षण लिया। वर्मीकंपोस्टिंग, केंचुओं के उपयोग से अच्छी खाद तैयार करने की एक प्रक्रिया है। बायोमास केंचुओं का भोजन हैं और इनके द्वारा निकाली गई मिट्टी को 'वार्म कास्ट' कहा जाता है। यह पोषक तत्वों से भरपूर होता है और इसी कारण इसे 'काला सोना' भी कहा जाता है। केंचुए तीन साल तक जीवित रहते हैं और तेजी से प्रजनन करते हैं, जिससे यह प्रक्रिया बिजनेस के लिए टिकाऊ और सस्ती बन जाती है। जैविक खेती प्रणाली के एक मुख्य अंग के रूप में इसके बढ़ते महत्व के अलावा, वर्मीकंपोस्टिंग को स्वच्छ, टिकाऊ और जीरो को वेस्ट तरीका भी माना जाता है क्योंकि कचरे को नष्ट करने में जीवाणु, केंचुओं की बड़े पैमाने पर सहायता करते हैं।

सफलता का विवरण

प्रशिक्षण के बाद श्रीमती राकेश ने वर्मीकंपोस्ट बनाने का कार्य शुरू किया। उन्होंने घर में प्रयोग होने वाली फल सब्जियों के अवशिष्ट तथा अपने खेत से निकलने वाले अवशिष्ट को गोबर में मिलाकर उससे वर्मीकंपोस्ट बनाने लगी। शुरुआत में इन्होंने इस खाद का इस्तेमाल केवल अपने खेतों पर किया। उन दिनों राकेश अपने लिए ही वर्मीकंपोस्ट तैयार करती थी लेकिन जैसे–जैसे उत्पादन बढ़ा, इन्होंने बिक्री करनी शुरू कर दी। देखते ही देखते राकेश का वर्मीकंपोस्ट का काम चल निकला और उनके ग्राहकों की संख्या बढ़ती गई। अच्छे उत्पादन से प्रोत्साहित राकेश ने अपनी कंपनी खोल ली, जिसका नाम 'भूमि संजीवनी' रखा गया है। अब वह वर्मीकंपोस्ट का व्यापारिक तौर पर भी उत्पादन करने लगी हैं जिसे बेचकर अच्छा मुनाफा कमा रही हैं। क्षेत्र में श्रीमती राकेश ने महसूस किया कि लोग अब रसायनिक खाद का प्रयोग छोड़कर ऑर्गेनिक खेती की तरफ लौट रहे हैं। फलस्वरुप उनके द्वारा निर्मित केंचुआ खाद की मांग खूब बढ़ रही है और दूर–दूर से लोग आकर उनसे केंचुआ खाद खरीद कर ले जा रहे हैं।

आमदनी/व्यवसाय का विवरण

क्रम संख्या	गतिविधि/उद्यम	कुल क्षेत्रफल (वर्ग फुट)	कुल उत्पादन (q)/वर्ष	कुल लागत (रुपये)	कुल आमदनी (रुपये) @ Rs. 8/किलो	शुद्ध लाभ (रुपये)
1	केंचुआ खाद उत्पादन उद्यम	200	360	78,000.00	2,88,000.00	2,10,000.00

सफलता का असर

साथ ही साथ श्रीमती राकेश अपने घर के किचन गार्डन एवं 2 एकड़ जमीन में वर्मीकंपोस्ट का प्रयोग कर ऑर्गेनिक खेती कर रही हैं। वर्मीकंपोस्ट के प्रयोग से फसल में फूटाव बहुत ज्यादा होता है फलस्वरुप उत्पादन भी बढ़ने लगा। फसल की अच्छी गुणवत्ता के कारण उनको मार्केट में दाम भी ज्यादा मिलने लगा है व आय में बढ़ोतरी होने लगी, जिससे उनकी आय बढ़ने के साथ–साथ परिवार की सेहत भी अच्छी हुई और यह उनके लिए "सोने पर सुहागा" होने वाली बात साबित हो रही है।

जब से उन्होंने ऑर्गेनिक खेती करनी शुरू की है, फसल उत्पादन बढ़ने लगा है और दूसरा जो रसायनिक कीटनाशक का खर्च था वह भी खत्म हो गया है। वर्मीकंपोस्ट का प्रयोग करने से उन्हें किसी भी प्रकार की दवाई का छिड़काव करने की आवश्यकता नहीं होती। फसल में किसी प्रकार का कोई रोग नहीं होता, क्योंकि वर्मीकंपोस्ट फसल में प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है और फसल को गिरने से बचाता है। राकेश कहती हैं, "हमने केमिकल उर्वरकों और कीटनाशकों का उपयोग कर, प्राकृतिक प्रणाली में हस्तक्षेप किया है, जो हमारे स्वास्थ्य पर गलत प्रभाव डालते हैं। जैविक उत्पादन चीज़ों की प्रकृतिक गुणवत्ता को बनाए रखते हैं और खराब नहीं होने देते हैं। ये न सिर्फ हमारी सेहत के लिए अच्छा है बल्कि इससे जमीन की उर्वरता भी बनी रहती है।

क्षेत्र में योगदान

पहले वह छोटे–छोटे कामों के लिए दूसरों पर निर्भर रहती थी। आज उन्हें किसी भी काम के लिए दूसरों पर निर्भर रहने की आवश्यकता नहीं है। अब वह अपना घर का खर्च खुद निकाल लेती हैं जिस पर बहुत गर्व महसूस होता है। वह कहती हैं कि आत्मनिर्भर भारत बनाने में यह मेरा छोटा सा योगदान है।

लेखकों से...

1. अपने तकनीकी एवं लोकप्रिय लेख हिन्दी में टाइप करवाकर भेजें।
2. रचना पृष्ठ के एक ओर उचित हाशिया और पंक्तियों के बीच स्थान छोड़कर सम्पादक, प्रसार दूत के पास यथा समय भेजें।
3. तकनीकी पर दी गई जानकारी की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होगी। रचना को प्रकाशित करने या न करने का पूरा अधिकार सम्पादक मंडल को होगा।

प्रसार दूत का प्रकाशन समय

वार्षिक शुल्क ₹150/- मनीऑर्डर द्वारा भेजें।

शुल्क और सामग्री भेजने एवं पत्रिका मंगवाने का पता

प्रभारी अधिकारी
कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)
भा.कृ.अ.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012
फोन: 011-25841670, 25846233, 25841039, 25803600
पूसा एग्रीकॉम: 1800 11 8989 (नि:शुल्क)
ई-मेल: incharge_atic@iari.res.in

पाठकों से...

प्रसार दूत में प्रकाशित किसी भी तकनीकी के विषय में अंश और समाधान हेतु आपके पत्रों का स्वागत है। विषयों पर अधिक जानकारी के लिए लेखक से सीधे भी सम्पर्क कर सकते हैं।

किसानों से...

यदि आपकी खेती व पशु-पालन संबंधी कोई विशेष समस्या है, तो लिखकर भेजें। हम प्रसार दूत के माध्यम से उसका समाधान आप तक पहुंचाएंगे।

अन्त में ...

आपकी खुशहाली ही हमारी सफलता है।

निदेशक, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली 110012 द्वारा प्रकाशित तथा
मैसर्स एम एस प्रिंटर्स, सी-108/1 बैक साइड नारायणा इंडस्ट्रीयल एरिया, फेस-1, नई दिल्ली-110028, द्वारा मुद्रित
फोन: 7838075335, 9899355565, 9899355405,